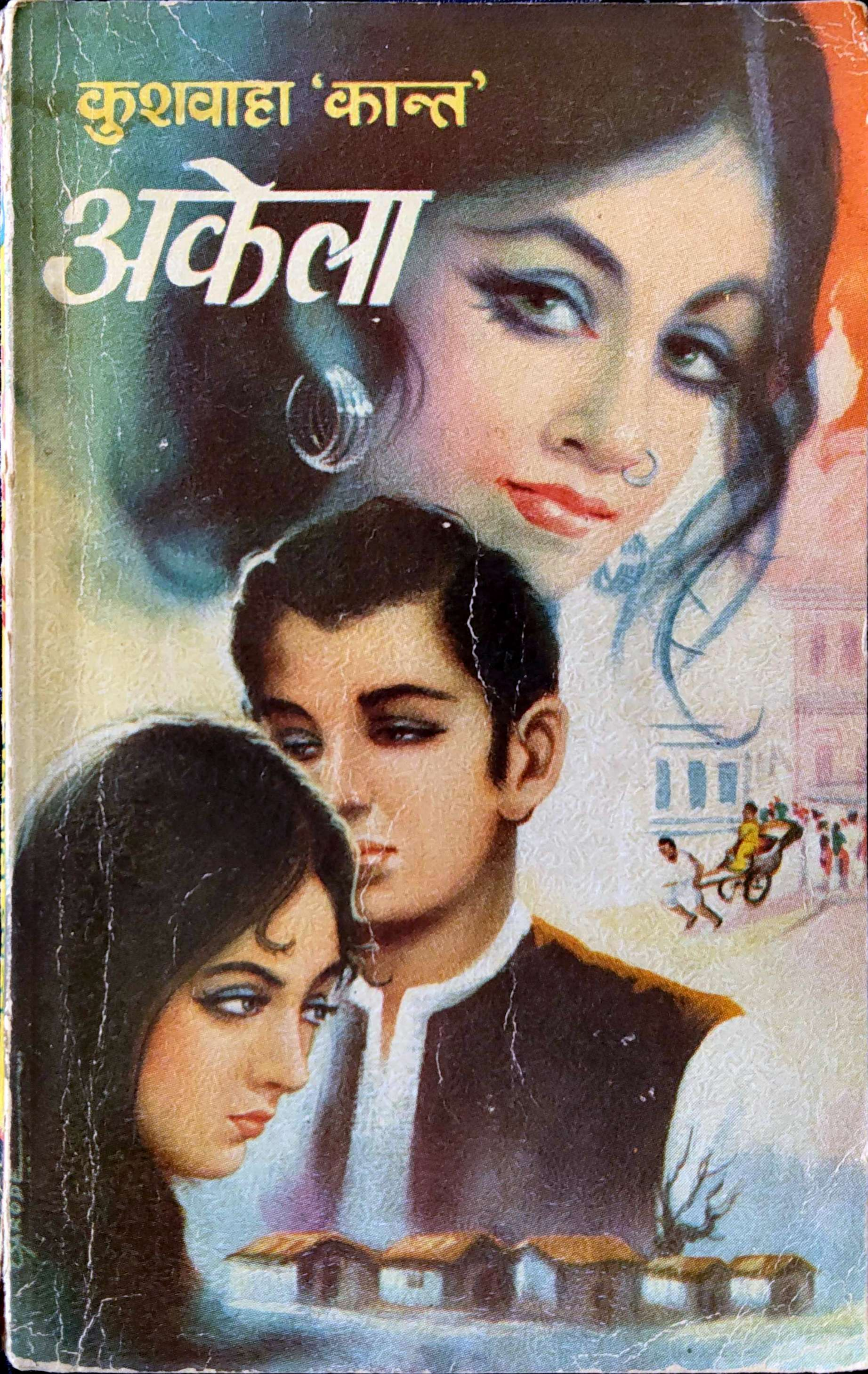

कुशवाहा 'कान्त'
अकेला

अकेला

S.P.B.—1

" मैं तो अकेला हूं, भाभी !"

"अकेले हो ! सितमगर ! अपने साथ मेरा भी दिल बांध-कर अब कहते हो अकेला हूं ? बोलो ?"—गुलाब के हाथ धीरे-धीरे विकल की ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण दो जान दो शरीर मिलकर एक जान, एक शरीर हो गये।

"मुझे छोड़ दो भाभी !"

"—नहीं छोड़ूंगी—नहीं छोड़ूंगी, जालिम ! मुझे भी अपने साथ ले चलो"

—इसी उपन्यास में से


अकेला
स्व. कुशवाहा 'कान्त'

कुशवाहा 'कान्त' के प्रेमी पाठकों से दो शब्द

उपन्यास पढ़ने से पहले इसे अवश्य पढ़लें।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार कुशवाहा 'कान्त' का जन्म ९ दिसम्बर सन् १९१८ को हुआ था और निधन १२ मार्च सन् १९५२ को। कुशवाहा 'कान्त' का नाम आज से ३५ वर्ष पूर्व उपन्यास लेखकों की श्रेणी में हिन्दी उपन्यास जगत में उदित हुआ था।

उस समय उनकी सरस-सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल सी मचा दी थी। उनकी चार या पाँच ही पुस्तकें प्रकाशित हो पाई थी, कि पाठकों के प्रशंसा के पत्र आने लगे। साथ ही नित्य नई रचनाओं की मांग भी होने लगी।

इस प्रकार कुशवाहा 'कान्त' जी का भी उत्साह बढ़ने लगा और वे एक के बाद एक नये उपन्यास अपने पाठकों के लिए लिखते गये। उनके उपन्यास प्रकाशित होते ही हाथों-हाथ बिक जाते। धीरे-धीरे उनका नाम तथा उनके उपन्यासों की चर्चा बढ़ने लगी। साथ ही उनके सभी उपन्यासों की मांग दिन पर दिन बढ़ती गई। थोड़े ही समय में उनका नाम तथा उनके उपन्यासों की मांग पूरे भारतवर्ष में बढ़ने लगी थी। उनकी अभूतपूर्व लोकप्रियता ने हिन्दी उपन्यास जगत में एक नये युग का निर्माण किया।

वे अपने जीवन काल में ही इतने लोकप्रिय हो गये थे, जिसे देखकर कुछ साहित्यकारों को ईर्ष्या होने लग गई थी। वे उपन्यास लिखने के साथ-साथ कई पत्रिकाओं का सम्पादन-प्रकाशन भी करते थे। जिनमें चिनगारी, नागिन और बिजली प्रमुख हैं। सन् १९५२ तक वे कुल ३५ पुस्तकें लिख चुके थे। सभी पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी थीं। अभी न जाने कितनी पुस्तकें पाठकों के सामने आतीं। पर दुर्भाग्यवश मार्च सन् १९५२ में उनका दुःखद एवं असामयिक निधन हो गया। उनके निधन से हिन्दी उपन्यास जगत को गहरा धक्का लगा।

आज उनके निधन के २८ वर्ष के बाद भी उनकी लोकप्रियता रंचमात्र भी कम नहीं हुई है। इसका ज्वलन्त प्रमाण है, कि कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा उनके नाम से जाली और नकली उपन्यासों का प्रकाशन करके उनके उपन्यासों के नये प्रेमी पाठकों तथा पुस्तक विक्रेताओं को धोखा दिया जा रहा है और ठगा जा रहा है।

अतः कांत साहित्य के प्रेमी नये तथा पुराने पाठकों से नम्र निवेदन है कि आप इस प्रकार की जाली और नकली पुस्तकें खरीदने से बचें।

आपकी जानकारी के लिए उनके सभी सही और असली ३५ पुस्तकों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

१—नीलम
२—चूड़ियाँ
३—लवंग
४—मंजिल
५—कुंकुम
६—निर्मोही
७—भँवरा
८—अपना-पराया
९—आहुति
१०—पागल
११—अकेला
१२—जलन
१३—इशारा
१४—बसेरा
१५—लाल रेखा
१६—पपिहरा
१७—पारस
१८—नागिन
२०—मदभरे नयना
२१—विद्रोही सुभाष
२१—परदेसी प्रथम भाग
२२—परदेसी द्वितीय भाग
२३—जंबीर
२४—लालकिले की ओर
२५—पराजिता
२६—उड़ते उड़ते
२७—गोल निशान
२८—उसके साजन
२९—जवानी के दिन
३०—हमारी गलियाँ
३१—रक्त मन्दिर
३२—दानव देश
३३—खून का प्यासा
३४—कैसे कहूं
३५—काला भूत

उपरोक्त ३५ उपन्यासों के अतिरिक्त कुशवाहा 'कान्त' लिखित कोई और उपन्यास नहीं है। यदि उनके नाम से उपरोक्त ३५ उपन्यासों के अलावा जो भी उपन्यास आपको दिखाई दें उसे जाली और नकली समझें।

अब तक महान उपन्यासकार स्व० कुशवाहा 'कान्त' की सभी पुस्तकें पाकेट बुक्स आकार में अप्राप्य थीं। उनके प्रेमी पाठकों के निरंतर अनुरोध पर उनकी लोकप्रिय कृतियाँ जो अब-तक पाकेट बुक्स आकार में नहीं छपी थी, अब सुरुचिपूर्ण आकर्षक पाकेट बुक्स आकार में सरस्वती पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित कर आप सभी प्रेमी पाठकों तक पहुँचाई जा रही है। प्रस्तुत उपन्यास उनके अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यासों में से एक है, जो आपके समक्ष प्रस्तुत है।

सम्पूर्ण कांत साहित्य के लिए चौधरी एण्ड सन्स नीचीबाग, वाराणसी को या सरस्वती पाकेट बुक्स सी० २२/११, कबीर रोड, वाराणसी को लिखें।

व्यवस्थापक

सरस्वती पाकेट बुक्स

सी २२/११ कबीर रोड

वाराणसी–१

लोकप्रिय कथाकार

कुशवाहा 'कान्त'

रचित

अत्यन्त रोचक उपन्यास

१—नीलम
२—चूड़ियाँ
३—लबंग
४—मंजिल
५—निर्मोही
६—कुंकुम
७—भँवरा
८—अपना- पराया
९—आहुति
१०—पागल
११—अकेला
१२—जलन
१३—इशारा
१४—बसेरा
१५—लाल रेखा
१६—पपिहरा
१७—पारस
१८—नागिन
१९—मदभरे नयना
२०—विद्रोही सुभाष
२१—परदेशी प्रथम भाग
२२—परदेसी द्वितीय भाग
२३—जंजीर
२४—लालकिले की ओर
२५—पराजिता
२६—उड़ते-उड़ते
२७—गोल निशान
२७—उसके साजन
२८—जवानी के दिन
२९—हमारी गलियाँ
३०—रक्त मंदिर
३२—दानव देश
३३—खून का प्यासा
३४—कैसे कहूँ
३५—काला भूत

प्राप्ति स्थान :

सरस्वती पाकेट बुक्स

सी० २२/११, कबीर रोड,

वाराणसी - १

'तुरन' को

अकेला   १

"अकेला हूं बाबू जी !"—

रिक्शेवाले के इस कथन में जो मार्मिक वेदना अन्तर्हित थी, उसे बाबूजी न समझ सके। एक बार 'हूं' कहकर वे सिगरेट का कश खींचने और शून्याकाश में धूआँ फेंककर गोल छल्ला बनाने का प्रयत्न करने लगे। वह दीनहीन रिक्शावाला पुनः तीव्र गति से रिक्शा खींचने में निमग्न हो गया। मनुष्य भी पशु की तरह गाड़ी खींच सकता है, पशु की तरह सवारी लेकर दौड़ सकता है—इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण ये रिक्शे वाले हैं। मनुष्य की दीनता कितनी विषम होती है ? उफ्। कहाँ कृश तनधारी दीन रिक्शेवाले और कहाँ उसपर रोब जमाने वाले बाबू लोग।

"अरे भाई ! जरा और तेजी से चल !—" बाबूजी को रिक्शे वाले की तेजी पर सन्तोष नहीं था, वे तो उसे पैसे द्वारा खरीदी हुई मशीन समझते थे।

"चल रहा हूं, बाबू ! जरा दम बाँध लूँ"—रिक्शेवाले के मुँह से दीनतासूचक हताश वाणी निकली।

"तो तू अकेला है ?—क्यों ?" बाबू ने पूछा, मानो उसका अकेला होना उनके लिए कोई कौतूहलपूर्ण बात थी।

रिक्शे वाला दौड़ते-दौड़ते हाँफ रहा था। बोला—"दुनिया में कौन अकेला नहीं है बाबूजी !"

कितनी वेदनापूर्ण एवं वास्तविक उक्ति थी ! मनुष्य संसार में अकेला ही तो आया है, और अकेला ही जायगा भी। अनेकों प्रकार की दुरूह यातनाओं को सहन करता हुआ यह मानव-जीवन प्रस्फुटित होता है, परन्तु है, वह एकाकी ही, अकेला ही। मुट्ठी बांधे हुए एक बालक के रूप में वह जन्म लेता है-अकेला! इस संसार में आकर उसके कितने ही कल्पित जीवन-साथी बन



जाते हैं—माता-पिता-भाई आदि, परन्तु वे इस नश्वर जगत के साथी हैं--स्वयं वे नश्वर हैं। मनुष्य हाथ पसारे हुए, प्रयाण करता है--अकेला !

"अकेला रहने में तुम्हें तकलीफ तो होती ही होगी?" बाबूजी का ऐसे प्रश्नों से मनोरंजन हो रहा था—समय कट रहा था।

"तकलीफ क्यों होगी बाबू ?...तकलीफ तो हमने जाना ही नहीं--" मलीन हँसी हँसकर वह बोला--"जो सदैव से विपत्तियों में अपना जीवन यापन करता है, उसे उसी में सुख एवं सन्तोष प्राप्त होता है।"

अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर बाबूजी रिक्शे पर से उतर पड़े और रिक्शेवाले के हाथ पर चार पैसे रख दिये। रिक्शेवाला इकन्नी देखता हुआ बोला-"चार पैसे और बाबूजी! ...पेट नहीं भरेगा !"

बाबू ने रिक्शेवाले के चेहरे पर आश्चर्यपूर्ण दृष्टि डाली। रिक्शा वाला दुबला-पतला आकर्षक युवक था। मुख से सौन्दर्य टपक रहा था और सौन्दर्य यह प्रकट कर रहा था कि वह कुछ पढ़ा-लिखा भी है—उसकी कमीज की जेब में खुसी हुई पेंसिल इस बात की साक्षी थी। उसके सिर पर लम्बे-लम्बे बेतरतीब बालों की एक लट उसका माथा चूम रही थी, जिससे उसकी मुखश्री और भी देदीप्यमान हो उठा थी। बाबू को तरस आ गया। उन्होंने चार पैसा और देकर सामने की राह ली।

"ओ रिक्शेवाले !..." सामने से आवाज आई। रिक्शेवाले ने देखा,एक बड़ी-सी दुकान के सामने खड़ी हुई एक श्रीमतीजी उसे बुला रही हैं। वह रिक्शा लेकर उधर लपका। श्रीमती आधुनिक फैशन में लिपटी हुई दामिनी सी दमक रही थी। फिर भी आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कर उन्होंने सौन्दर्य को और भी आकर्षक बना लिया था। उनकी अवस्था बीस से अधिक न थी। आंखों में हलाहल था और होठों पर लाली थी।

रिक्शा दुकान के सामने आ लगा, तो श्रीमती जी दुकान से उतर कर रिक्शे के पास आईं। सहसा रिक्शे वाले का चेहरा देखकर वे आश्चर्य से चीख उठीं—"विकल तुम ?"

रिक्शेवाला चौंक पड़ा, कदाचित् एक अपरिचित युवती को अपना नाम लेते हुए सुनकर। उसने युवती की ओर देखा-देखते ही वह सन्न रह गया। एक बार उसका शरीर केले के पत्ते की तरह काँपा फिर वह अपना रिक्शा उठाकर तेजी के साथ वहाँ से भाग चला। युवती कुछ दूर तक उसके साथ दौड़ी; मगर चौराहे तक पहुंचकर वह रुक गई। वहाँ कई पुलिसमैन उपस्थित थे। युवती ने एक को अपने पास बुलाया और उतावली के साथ बोली—"देखो !...वह जो सामने रिक्शावाला भागा जा रहा है—उसे पकड़ो..."

"उसने क्या किया है ?" पुलिसमैन ने दरियाफ्त किया।

"पहले उसे पकड़ो, पीछे बताऊँगी। काफी इनाम मिलेगा। वह फरार आसामी है-"युवती ने कहा। पुलिसमैन को दिलचस्पी हुई वह बोला—"फरार आसामी है ?...कहाँ का है ?..."

"मिर्जापुर का—" युवती ने उत्तर दिया और जाकेट की जेब से मुड़ा हुआ एक अखबार का टुकड़ा उसके आगे कर दिया। पुलिसमैन उसको लेकर अवज्ञा की हँसी-हँसता हुआ बोला—"मिर्ज़ापुर का फरार आसामी को इस वाराणसी में खोज रही हैं, आप ?"—इतना कहकर वह शीघ्रता से अखबार के टुकड़े पर दृष्टि दौड़ाने लगा। उसपर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था—

मिर्जापुर के सुप्रसिद्ध रईस रायबहादुर निहालचन्द के मकान में चोरी ! अभियुक्त पचास हजार का जेवर लेकर फरार !... पता देनेवाले को दो हजार इनाम।

इसके आगे पुलिसमैन ने पढ़ना ठीक नहीं समझा। दो हजार के इनाम की घोषणा से, उसके नेत्रों के आगे फरार आसामी की मुखाकृति नृत्य करने लगी। उसने पास खड़े हुए ताँगेवाले को

बुलाया और युवती से बोला—"आइये ?…" युवती औ पुलिसमैन ताँगे पर जा चढ़े ! पुलिसमैन ने ताँगेवाले से कहा "वह जो हरे रंग का रिक्शा जा रहा है, उसे पकड़ना है, बहुत जल्द..."

"बहुत अच्छा हजूर ?"—कहकर ताँगेवाले ने घोड़े चाबुक मारी और घोड़ा भाग चला। उस समय तक वह रंगका रिक्शा कई सौ गज दूर जा चुका था।

वह गरीब रिक्शा वाला घबराहट से रिक्शा लिए हुए स भागा जा रहा था। उस युवती के मुख पर उसने जाने कौन-सी भयानकता देखी थी कि डर कर भाग चला था, मगर अब भी विपत्ति ने उसका पीछा नहीं छोड़ा था। उसका भय द्विगुणित हो गया, जब उसने एक तांगे को अपने पीछे आते देखा। वह युवती एक लाल पगड़ी वाले के साथ उस पर बैठी थी। अभी तांगा पचास गज पीछे था, आखिर कब तक वह भाग सकता था।

एक मोड़ मिला। रिक्शा वाला मोड़ घूम गया। निराशा में आशा की क्षीण ज्योति जगमगा उठी, जब कि रिक्शे वाले ने अपने एक दोस्त को देखा। उस दोस्त का नाम था अफजल। तीस वर्ष की उम्र का लम्बे कदवाला खूंखार आदमी था वह।

"विकल !" अफजल ने पुकारा—"इतनी तेजी से कहां भाग रहे हो ?...अरे तुम्हारे मुँह पर यह मुर्दनी कैसी छा रही है—क्या हुआ है ?....खुदा कसम ! बिलकुल मुर्दा हो रहे हो तुम !.."

"दोस्त !..." विकल बोला—"एक ताँगा मेरा पीछा कर रहा है, उसपर एक पुलिस है और एक औरत। कोई छिपने की राह बताओ, नहीं तो…" विकल के मुँह से घबड़ाहट भरी आवाज निकली।

"पुलिस तुम्हारा पीछा कर रही है ?"—आश्चर्य से अफजल ने मुँह सिकोड़ा—"अच्छा तुम अपना रिक्शा मुझे दो और फौरन भागकर उस गली में चले जाओ। खुदा कसम ! आज तक गिरहकटी करके मैं सैकड़ों पुलिसमैन को चरका दे चुका हूँ।

विशालकाय अफजल नीचे झुका और रिक्शे का डंडा पकड़ कर उठा लिया। जबतक विकल भागकर उस गली में पहुँचा तबतक अफजल उसका रिक्शा लेकर आधा फर्लाङ्ग के करीब भाग चुका था। उसके शरीर में दानव सा बल था। आज कई साल से बनारस शहर में वह गुण्डई कर रहा था। गिरहकटी में वह मशहूर था। लम्बी-लम्बी रकमें उसके हाथ लगती थीं। उसके खूँखार नेत्र में लाल-लाल डोरे बड़े भयानक लगते थे, मुख पर सदा क्रूरता नर्तन करती रहती थी, शरीर का रंग आबनूस-सा काला था।

तांगे पर बैठा हुआ पुलिसमैन और वह युवती, बराबर रिक्शे का पीछा कर रहे थे। मगर थोड़ी देर तक भीड़ की आड़ में रहने के कारण वे यह न देख सके थे कि जिसकी खोज में वे हैं, वह तो उनकी आँखों में धूल झोंक कर निकल भागा।

"और तेज चलो—" सिपाही ने तांगे वाले से कहा। तांगे वाले ने घोड़े को पूरी रफ्तार से भगा दिया। रिक्शावाला बहुत तेज भागा जा रहा था। सिपाही को आश्चर्य हो रहा था कि रिक्शावाला भी कितना शक्तिशाली है!....उफ्! आदमी है या शैतान! रिक्शा लेकर कितना तेजी से भागा जा रहा है"—उसके मुँह से हैरत की आवाज निकल पड़ी।

"देखो, अगर तुम उसे पकड़ सके तो सरकारी इनाम के अतिरिक्त मैं भी तुम्हें इनाम दूँगी—" युवती ने कहा।

"आप शान्त रहिये, अब साला कहाँ जा सकता है ...अरे वह तो उधर भागा-बहुत चक्कर काट रहा है। ओ तांगा वाले! घोड़े को चाबुक लगा, रफ्तार तेज कर! ताज्जुब हैं, एक मामूली रिक्शेवाले को नहीं पकड़ सकता?"

"हुजूर! वह तूफान है, तूफान! मगर देखिये, वह खड़ा हो गया है अब। आखिर थक गया न! कहाँ तक दौड़ेंगे बच्चू..."

रिक्शा सचमुच रुक गया था। पलक मारते भर में तांगा उसके पास पहुँच गया। पुलिसमैन कूदकर नीचे आ रहा और

तेजी से रिक्शे वाले की ओर बढ़ा। युवती हर्षातिरेक से चिल्ला उठी—"पकड़ो—पकड़ो !"

२

गुलाब-सी खूबसूरत उस छोकरी का नाम गुलाब ही था। अपने जीवन के पूरे पन्द्रह साल; उसने गमगीनी में काटे थे। बाल्यावस्था की चपलता लाँघ कर युवावस्था की उन्मादकारी गम्भीरता में प्रवेश करने पर भी; उसके लिए कोई सुख न था—तनिक भी आनन्द न था। अपना नीरस दैन्य-जीवन व्यतीत कर रही थी वह। उसकी सुन्दरता दिन और रात का मुँह देखती हुई और भी आकर्षक होती जा रही थी। उसका लावण्य, कुर्ती एवं लहंगे के मध्य से अपनी प्रभा बिखेर रहा था। सहज मुस्कान का संयोग पाकर; उसके आरक्त कपोल और भी अरुणिमा धारण कर गुलाब की पंखुड़ी को भी मात कर रहे थे। जब वह अपना छोटा-सा झाड़ू हाथ में लेकर आँगन बुहारने लगती थी तो उसके वक्ष पर से दुपट्टा सरक कर उसे याद दिला देता था। कि ये तेरे जवानी के दिन हैं।

उसका घर एक गरीब मुहल्ले के कोने में था। उस मुहल्ले में सभी गरीब थे—कुली, इक्केवान,, रिक्शेवाले, गिरहकट, भिखमंगे आदि। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे संसार की सारी करुणोत्पादक दीनता साकार होकर उस मुहल्ले में आ गई हो। वह मुहल्ला मानो दीनता का जीता जतागा चित्र था।

गरीबों के मुहल्ले में रहने पर भी गुलाब अच्छी तरह रहती और खाती पीती थी। उसका घर साफ-सुथरा रहता था। उसके बदन पर के कपड़े साफ रहा करते थे। घर में बर्तन भी काफी थे, कपड़े-लत्ते का अभाव न था। वह नित्य अपने हाथ से अपना घर साफ किया करती थी। आज भी छोटा-सा झाड़ू लेकर, वह घर बुहारने में व्यस्त थी। सिर पर की ओढ़नी रह-रहकर नीचे

खिसक पड़ती थी, जिसे सम्हालने के लिए वह कुछ देर तक सुस्ता लेती थी। अपनी पतली कमर पर बल देकर उसका खड़ा होना भी अजब था, गजब था।

घर के किवाड़ झटके से खुल गये और दौड़कर आने वाले ने गुलाब से जोरों की टक्कर ले ली। गुलाब जमीन सूँघने लगी परन्तु तुरन्त ही उठ कर वह आगन्तुक की ओर आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखती हुई बोली—"अरे तुम ! विकल···अरी अम्मा ! तुम्हारे चेहरे से इतनी परेशानी क्यों टपक रही है ? तुम हाँफ क्यों रहे हो ? इतनी घबराहट कि सम्हल न सके और मुझसे टक्कर ले ली—" कहकर हस पड़ी वह।

आगन्तुक विकल ही था, परन्तु अब भी उसके चेहरे पर पीलापन मौजूद था, सूरत से घबराहट बरस रही थी, वह अपना सर पकड़कर चारपाई पर बैठ गया—"माँफ करना भाभी !' उसने कहा।

"आखिर तुम्हें हुआ क्या है ? तुम घबराये हुए क्यों हो ?"—गुलाब ने पूछा।

"क्या बताऊँ ?··· जाने भी दो भाभी।"

"अरी अम्मा ! तुम तो औरतों की तरह घबड़ा रहे हो-?" गुलाब विकल की ओर चली आई और उसके पास चारपाई पर बैठती हुई मधुर मुस्कान के साथ बोली—"जरा हिम्मत से काम लो।"

गुलाब की सान्त्वनापूर्ण बातों से विकल कुछ स्वस्थ हुआ। उसके मुँख की कालिमा ने लालिमा का स्थान ले लिया। बोला—"बहुत मामूली सी बात थी–अफजल भाई ने मुझे बचा लिया!"

"वे कहाँ हैं ?···" 'वे' से गुलाब का अभिप्राय अफजल से था। वह अफजल की पत्नी थी। जिस प्रकार गुलाब का जीवन कांटों में ही व्यतीत होता है, उसी प्रकार सौन्दर्यमयी गुलाब का जीवन भी अफजल जैसे कांटों के हाथ प्रस्फुटित हो रहा था। अफजल जितना ही बदसूरत और खूँखार था, गुलाब उतनी ही खूबसूरत और भोली थी।

"उनके बिना चैन नहीं पड़ता, क्या भाभी ?..." विकल ने मजाक किया।

"चलो ! तुम बड़े शोख हो···" मधुर मुस्कान बिखेरती हुई बोली और वह विकल की बगल से उठकर खड़ी हो गई— "अब तुम आराम करो, मैं घर का काम निपटा लूँ—"

❀ ❀ ❀ ❀

"अरे ! यह तो वह नहीं है—" युवती के मुँह से बेतहाशा चीख निकल पड़ी, यह देखकर कि रिक्शा वाला दूसरा है, वह नहीं जिसे वह विकल समझती थी और जिसका पीछा करती हुई वह पुलिसमैन के साथ यहाँ तक आई थी। वह तो खूबसूरत-सा नौजवान छोकरा था और यह है भयानक आकृतिवाला काला हब्शी ! युवती चौंक कर कई पग पीछे हट गई। पुलिसमैन ने पूछा—"यह रिक्शा तुम्हारा है ?"

अफजल ने कहा—"जी हजूर !···मेरा ही है।"

"तुम रिक्शा लेकर भागे क्यों···?"

"क्या खाली रिक्शा लेकर दौड़ना गुनाह है, गरीब परवर!"

"ज्यादे बकबक मत करो, जो मैं पूछता हूं उसका जबाब दो...तुम इन मैडम साहब के सामने से क्यों भाग खड़े हुए ?—" पूछा पुलिसमैन ने।

"खुदा कसम, हुजूर ! मैंने इन्हें कभी देखा तक नहीं है···" कहते हुए अफजल ने एक तीव्र दृष्टि उस युवती पर डाली, कदाचित् वह यह जानना चाहता था कि इस युवती में ऐसी क्या भयानकता है ? जिससे डरकर विकल भाग खड़ा हुआ था। अपनी ओर उस दुर्दान्त बदमाश को देखते हुए पाकर वह युवती काँप उठी। न जाने क्यों ? अफजल को देखकर उसका कलेजा धड़कने लगा। एकाएक अफजल की दृष्टि युवती की कलाई पर बँधी फैन्सी रिस्टवाच पर पड़ी। सोने की मूल्यवान घड़ी देखकर अफजल ने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। उसी समय युवतीके काँपते हाथों से कागज छूटकर जमीन पर गिर पड़ा। युवती उसे उठाने के लिए झुकी, तब तक अफजल भी झुक चुका था। नतीजा

ह हुआ कि युवती की कलाई अफजल के हाथ से छू गई। वती ने कुछ ध्यान नहीं दिया। रिक्शेवाले ने बड़ी शिष्टता के थ उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया था। परन्तु उसे भी यह पता न था कि उसकी सोने की चेनवाली घड़ी इस क उस खूँखार गिरहकट की जेब आबाद कर रही है। जरा- ही देर में गिरहकट बदमाश ने अपना काम बना लिया था।

"चलो अब लौट चलो..." युवती ने पुलिसमैन से कहा— हम लोगों की आँखों में वह धूल झोंककर भाग गया--"

"चलिये !..." पुलिसमैन ने निराश होकर कहा। दो हजार इनाम की आशा पर एकाएक तुषारापात हो गया।

दोनों आकर पुनः ताँगे पर बैठ गये। ताँगा वापस लौट चला। अबतक अफजल गम्भीर था, फिर भी उसके हृदय में कौतु- की मात्रा पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी--यह युवती कौन है विकल से उसका क्या सम्बन्ध है?--इत्यादि बातें उसे ान किये हुए थीं। किसी निर्णय पर न पहुँच कर उसने शा उठाया और ताँगे के पीछे दौड़ चला। वह यह देखना हता था कि युवती रहती कहाँ है ?

कितनी ही जनपूरित सड़कों पर से वह ताँगा दौड़ता रहा अफजल भी खाली रिक्शा लिए उसके पीछे-पीछे चक्कर टता रहा। अन्त में एक बड़े से होटल के सामने आकर तांगा । उस होटल का नाम था 'हनीमून'। बाहर से उसकी -सजावट अनुपम प्रतीत हो रही थी, फिर भीतर का क्या । युवती तांगे पर से उतरकर पुलिसमैन से बोली--"अब जा सकते हो।"

"मेरा इनाम मैडम !"–पुलिसमैन बोला–"कुछ तो दीजिए, पके साथ काफी परिश्रम किया है।"

"अच्छा लो..." युवती बोली और उसने सिपाही के हाथ पांच रुपये का नोट रख दिया। तत्पश्चात् वह होटल के -सजावटपूर्ण चहल-पहलमय वातावरण में विलीन हो गई। भी अपने रास्ते चल दिया।

अफजल दूर से सब कुछ देख रहा था। जब उसे विश्व हो गया कि उस अद्भुत रमणी का डेरा इसी होटल में है, वापस लौट पड़ा। पास ही 'यूनियन कालेज' की विशाल बिल्डि थी। वहीं रुक कर किसी सवारी की प्रतिक्षा करने लगा। समय कालेज बन्द हो गया था। कालेज में पढ़ने वाले युव तथा युवतियाँ अपने-अपने निवास-स्थान की ओर प्रस्थान कर रहे थे। "हजूर आइये ले चलूँ" कहकर अफजल किसी को टो देता था, परन्तु उसके रिक्शे पर जाना किसी ने पसन्द न किया। कदाचित उसकी भयानक सूरत ही इस कार्य बाधक थी।

वह भी 'यूनियन कालेज' में पढ़ती थी। नाम था उसक कान्ता कुमारी। शहर के एक नामी बैंकर की कन्या थी। अभ वह युवावस्था का मादक स्वप्न देख रही थी. उसका सौन्दर्य कालेज के विद्यार्थियों की चर्चा का प्रधान विषय रहा करता था। वह बड़ी देर से अफजल के रिक्शे को देख रही थी, शायद अफजल की भयानक सूरत देखकर पास आने में हिचक हो थी। आखिर वह पास आई और मधुर स्वर में पूछ बैठी "यह किसका रिक्शा है....?"

"मेरा है हजूर, मेरा।"—जितनी देर उसके प्रश्न करने लगा उससे आधी ही देर में अफजल ने उत्तर दे डाला। म उसका उत्तर सुनकर कान्ता को कुछ आश्चर्य हुआ। उसने बार फिर रिक्शे को ध्यान पूर्वक देखा, और आश्वस्त हो दृढ़ स्वर में बोली—"नहीं, यह तुम्हारा रिक्शा नहीं है...."

"खुदा कसम! मेरा है हुजूर!"—अफजल को बात में खुदा कसम कहने की आदत पड़ गयी थी।

"विकल कहाँ है?" कान्ता एकाएक पूछ बैठी।

"ओह! आप तो उसे जानती हैं—बड़ा अच्छा लड़का वह, हजूर! खुदा कसम, आदमी नहीं—हीरा है! हीरा! रिक्शा उसी का है—"

कान्ता को उस खूँखार गिरहकट से दिलचस्पी हुई। सभ्यता पूर्ण बातें, उसका बात-बात में 'खुदा कसम' खा

र उसकी बातचीत से कान्ता ने यह अनुमान लगा लिया कि स्तव में यह जितना भयानक दिखाई पड़ता है, उतना है नहीं। । अन्तस्थल विशुद्ध पदार्थ का बना है।

"अच्छा तो मुझे घर तक पहुँचा दो···" कहती हुई कान्ता शे पर बैठ गई। अफज़ल रिक्शा उठाकर भाग चला।

"आप विकल को कैसे जानती हैं, हुज़ूर?"— पूछा ल ने।

"यूँ ही, वह रोज यहाँ आता है और मुझे घर तक पहुँचा देता छा रिक्शेवाला है···" कान्ता ने सहज भाव से कह दिया।

"अजी हुज़ूर! वह ऐसा वैसा नहीं है—काफी पढ़ा-लिखा। ज़ब ख़ाली रहता है, तो कमरे में बैठा-बैठा न जाने क्या-लिखा करता है। उसके पास चिट्ठियाँ भी बहुत आती हैं, -की-ढेर! खुदा कसम! गुलाब उसे बहुत चाहती है। हज़ूर उसे सगे भाई-सा प्यार करती है!"

"गुलाब कौन है?" आकस्मिक उत्सुकता से वह पूछ बैठी।

"वह तो मेरी बीबी है हुज़ूर! बिलकुल नादान छोकरी है। कसम! वह ऐसा ख़ाना पकाती है कि अल्लाह-रे-अल्लाह?.."

"तुम विकल के पड़ोस में रहते हो?–"

"जी हाँ हज़ूर!····मगर रिक्शा ख़ींचना मेरा काम नहीं।" अब कान्ता का घर आ चुका था। रिक्शा रोकने को र वह उतर पड़ी और जेब से एक रुपया निकालकर उसे हुई बोली–"कल विकल को जरूर भेज देना—समझे!"

"ख़ुदा कसम! वग़ैर भेजे दम न लूँगा हज़ूर, मगर यह? एक रुपया क्या होगा एक चवन्नी काफी है—" अफजल ही रहा पर बिना सुने कान्ता घर में चली गयी।

"हनीमून होटल" शहर के नामी होटलों में से एक था। वह कुछ ही दिनों से चालू हुआ था, मगर अल्पकाल में ही सुव्यवस्था के कारण प्रसिद्ध हो गया था। उसके चार्ज बहुत

ऊँचे थे, इसी कारण उसमें रईसों एवं सम्पन्न व्यक्तियों के रिक्त धनहीन एवं साधारण स्थिति के मनुष्यों का आगमन होता था।

वह रहस्यमयी युवती इसी विशाल होटल में घुसी होटल के अन्दर की साज सजावट अत्यन्त उत्कृष्ट थी। पहने हुए कई बेयरे काम कर रहे थे। इस युवती को वे सभी सम्मान-पूर्वक अभिवादन करने लगे; मानो उनके वह युवती बहुत ही माननीय हो। एक बात आश्चर्योत्पादक वह यह कि वहाँ किसी भले आदमी की सूरत नहीं रही थी। यद्यपि कितने ही मनुष्य सभ्य पुरुषों की पोशाक हुए वहाँ उपस्थित थे, परन्तु सभी के मुख से अभद्रता गुण्डापन झलक रहा था। शराब की नदी बह रही थी अश्लील गीत-प्रवाह वातावरण को क्षुब्ध बना रहा था। हाल में चारो ओर संगमरमर की मेजें लगी हुई थीं, जिसके बहुत से लोग बैठकर खाने-पीने में व्यस्त थे। डाइनिंग बीच में एक गोलाकार चबूतरा था, जिसपर मिर्जापुरी बिछी थी। एक अर्धनग्न युवती चबूतरे पर नृत्य करती हुई प्रकार के हाव-भाव से उपस्थित लोगों का मनोरंजन कर उसके नृत्य में कला का तनिक भी समावेश न था। वह तो के हृदय में वासना जाग्रत कर; अन्तस्थल को एक क्ष मानसिक सुख प्रदान करने की हेय साधन मात्र थी। नर्तं गालों पर पुता हुआ पाउडर, होठों पर लगी हुई लिपस्टिक लम्बे-लम्बे नाखूनों पर पुते क्यूटेक्स—इन सबने यद्यपि उ सुन्दरता को विशेष रूप से आकर्षक बना दिया था, फिर उसमें छिपा था तीव्र हलाहल !—मादक विष ! उसके अर्ध उच्च वक्षस्थल पर कभी-कभी मृदु कम्पन की एक दौड़ जाती थी, साथ ही उसके नयन शरारत-भरी शोखी से कर उठते थे, तो दर्शकों की दृष्टि में तीव्र मादकता भर जाती

डाइनिंग हाल से होती हुई वह युवती सीढ़ियाँ चढ़कर सुसज्जित कमरे में पहुँची।

वह कमरा खुब सजा था। कई एक आदम-कद शीशे भी मौजूद थे। ऊपर बिजली का पंखा पूरी रफ्तार से चल रहा था। शाम का वक्त बीत चुका था, इसलिए कमरे में एक बहुत ही तेज रोशनी वाला बल्ब जल रहा था।

युवती एक कुर्सी पर बैठ गई। उसी समय एक लम्बे कद के आदमी ने आकर अभिवादन किया।

युवती बोली—"देखना पंडित होटल के आदमियों के अतिरिक्त अन्य कोई बाहरी आदमी न जानने पाये कि मैं यहाँ हूँ और मेरी ही सहायता से यह होटल चल रहा है..."

उस आदमी ने चातुरिकता के स्वर में कहा—"भला यह कभी हो सकता है, हुजूर !....बिना बताये कौन जान सकता है कि, मिर्जापुर के प्रसिद्ध रईस रायबहादुर निहालचन्द की धर्म पत्नी श्रीमती रसना देवी यहाँ विराजमान हैं..."

"ठीक, बहुत ठीक ! अब सुनो, एक रहस्य की बात बताती हूँ। विकल को आज मैंने देखा है। वह छद्मवेश में रिक्शा खींचा करता है। मैंने उसका पीछा किया परन्तु वह हाथ से निकल गया..."

"निकल गया !...ओह ! नहीं तो हमारी राह का काटा साफ हो जाता..."

"खैर ! वह जायगा कहाँ ?"

"अन्दर आ सकता हूं, भाभी ?"—विकल ने दरवाजे पर से ही पूछा। उसी समय छोटे आइने के पास बैठी गुलाब, अपना कृत्रिम सौन्दर्य देखती हुई, अपने नितम्ब-चुम्बी बालों की चोटी गूँथ रही थी। उसके सर की चादर नीचे गिरी हुई थी। सफेद सलूके के अन्दर से सुपुष्ट वक्षस्थलों का उभार आकर्षक

दीख रहा था। वह एकाग्रचित से अपना शृंगार करने तन्मय थी।

विकल की पुकार सुनकर वह चौंक पड़ी। शीघ्रता से च उठाकर अपने शरीर को ढँकती हुई बोली—"आओ न !.... मगर वह शर्म से गड़ी जा रही थी ! उफ ! विकल जाने कब दरवाजे पर खड़ा उसे देख रहा था और उसकी चादर भी नमकहराम कि खिसक कर जमीन पर गिर पड़ी थी।

"रहने दो तुम्हारा काम अधूरा रह जायगा..." कह विकल वापस लौटने लगा।

"लौट जाओ न, मेरी बला से..." वह क्षण भर के लिए कर हँस पड़ी—"अरी अम्मा ! तुम तो जरा-जरा-सी बात में जाते हो....यह औरतों-सा नखरा किससे सीखा ?" लपक क गुलाब ने विकल का हाथ पकड़ लिया और उसे अन्दर घसीट

"तुम्ही से तो सीखा है भाभी !...यह औरतों-सा नखर करना तुम्हीं ने तो सिखाया है...." कहकर वह भी जोरों हँस पड़ा। फिर गम्भीर बनकर बोला—"अफजल भाई अभी तक नहीं आये ?"

"आते ही होंगे। तुम उनके लिए जरा भी न घबराया करो... उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता..."

"मगर तुम तो उनका बहुत कुछ बिगाड़ सकती हो, भाभी ! अफजल भाई एक तुम्हीं से तो डरते हैं।"

"चुप भी रहो, नहीं तो वह सारा उबटन तुम्हारे मुंह पर मल दूँगी..." कहती हुई गुलाब ने ताख पर से थोड़ा उबटन हाथ में ले लिया।

"मैं चुप रहूँगा, भाभी ! एकदम चुप ! यह सजा भी तो बहुत प्यारी होगी, मगर उबटन लगाकर ही मत छोड़ देना, जरा अच्छी तरह मलकर साफ भी कर देना !"

"तुम बहुत बहके जा रहे हो...नहीं चुप रहोगे?...नहीं... अच्छा तो लो..." दौड़कर गुलाब विकल के मुँह पर उबटन

लगाने ही वाली थी कि विकल पीछे हट गया, मगर गुलाब कब छोड़ने वाली थी। उसने विकल के मुँह पर उबटन भरा हाथ लगा ही दिया। विकल ने उसका हाथ पकड़ लिया। इस समय दोनों के शरीर एक दूसरे के इतने सन्निकट आ गये थे कि दोनों एकाकार हो रहे थे।

"बहुत अच्छा किया...खुदा कसम! खूब किया गुलाब तुमने..." दरवाजे पर से आवाज आई। विकल और गुलाब ने चौंककर देखा कि अधखुले दरवाजे पर सदा का गम्भीर अफजल हँसता हुआ खड़ा है। गुलाब पीछे हट गई। विकल पानी-पानी हो गया....उफ! अफजल ने अपने मन में क्या सोचा होगा?

अफजल के शान्त मुख पर एक क्षण के लिए घृणा की रेखा दौड़ गई, मगर तुरन्त ही वह हँस पड़ा एक विकराल बनावटी सी—"ऐसी शरारत के लिए यह सजा वाजिब है—खुदा सम!..." वह आगे बढ़ आया और विकल की उबटन लगी हास्यास्पद सूरत देख, ठठाकर हँस पड़ा।

दस मिनट तक बराबर मलते रहने पर विकल की सूरत हुई। आज पहली बार उसे अफजल के सामने लज्जित होना ड़ा था, सो भी गुलाब की गलती से। उसने उसके मुख पर उबटन मला? उफ्! अफजल विकल को अपनी पत्नी के ने नजदीक देखकर न जाने क्या-क्या सोचता होगा?

"खूब हुआ...बड़ा मजा आया विकल?....उस औरत और को तो मैंने ऐसा चकमा दिया कि, खुदा कसम! सात तक न भूल सकेंगे वे। बड़ी अजीब औरत है वह..." कह-र अफजल ने अपनी जेब में हाथ डाला और उस युवती से हुई घड़ी निकालकर उसने विकल के हाथ पर रख दी—'यह जुर्माना वसूल कर लाया हूँ उससे।" कहकर गौर से सर कर वह गुलाब की ओर देखने लगा और बात-बात में लाब से सारा हाल कह गया।

"वह औरत कौन थी, विकल?..." पूछा गुलाब ने।

"जाने भी दो, मामी! वह बड़ी भयंकर औरत है..."

विकल ने कहा।

"रहने दो गुलाब ! यह विकल अपना कोई राज हमलोगों से बताना नहीं चाहता। छः महीने से यह हमारे साथ है और रिक्शा खींच रहा है, मगर अबतक इसने अपना कुछ भी राज नहीं बताया कि यह पहले कहाँ था और क्या करता था ?..." अफजल ने कहा।

"तुम ठीक कहते हो, आका !" गुलाब ने कनखियों से विकल की ओर देखा...और अफजल ने देखा, गुलाब का कनखियों से विकल की ओर देखना।

"देखा न यह अपने कमरे में बैठा हुआ सफेद कागज पर न जाने क्या-क्या लिखा करता है, पूछने पर बताता भी नहीं, कि कजली बनाता है या गजलें..." अफजल ने कहा—"इसके पास रोज एक-दो खत आते रहते हैं। अगर मैं पढ़ा-लिखा होता तो कुछ समझता भी कि उन चिट्ठियों में कैसी बातें लिखी रहती हैं..." कहते-कहते एकाएक अफजल उछलकर बोला—"खुदा कसम ! मैं उस दगाबाज औरत का डेरा देख आया हूँ ! वह एक बड़े होटल में ठहरी है..."

"विकल तुम उस औरत से डरकर भागे क्यों ?" गुलाब ने पूछा। उसके मदभरे नयन शोखी से नाच उठे।

"जाने दो गुलाब..." अफजल बोला—"यह हमेशा औरतों से डरता रहता है—तभी तो जब तुम उबटन लगा रही थी, तब...खुदा कसम ! डरकर वह गिरने-गिरने को हो गया था, खैर ! जाने दो, बक्शो बेचारे की जान !..."

सुनकर गुलाब का चेहरा पीला पड़ गया और विकल पत्ते-सा काँप उठा...तो क्या अफजल ने सारी घटना देख ली थी ? गुलाब का लपक कर विकल की ओर बढ़ना, विकल का डरकर पीछे हटना, गुलाब का जबर्दस्ती विकल के मुँह पर उबटन मल देना, विकल का गुलाब का कोमल हाथ पकड़ लेना, फिर अनायास ही दोनों के शरीरों का एकदम नजदीक आ जाना, कि एक की गर्म सांस दूसरे के मुँह पर पड़े, एक के हृदय की धड़कन

दूसरा भली प्रकार सुन सके ! क्या यह अफजल की आंखों से छिपा था ?

बड़ी कठिनता से विकल ने अपनी अन्यमन्यस्कता दूर की और बोला —"अब कुछ दिन मैं बाजार नहीं जाऊँगा—फिर देखा जायगा ।"

"नहीं, ऐसा नहीं कर सकते तुम !..." अफजल बीच में ही बोल उठा—"कल तुम्हें जाना ही पड़ेगा—उस लड़की ने तुम्हें बुलाया है ।"

"कौन लड़की ?—"

"वही जिसे रोज अपने रिक्शे पर चढ़ाकर कालेज से घर पहुँचाते रहे हो इतने अनजान न बनो ! तुम्हारी नस-नस की खबर है मुझे । उसका नाम नहीं पूछा; यह गलती हो गई..." तीव्र दृष्टि से अफजल ने विकल की ओर देखा—"बड़ी खूबसूरत लड़की है । मिजाज उसका ! खुदा कसम, लाजबाब है..."

"क्या वह खूबसूरत है ?" पूछा गुलाब ने; और दूसरे ही क्षण उसका उछलता दिल बैठ गया, यह जानकर कि दुनिया में उससे भी बढ़कर खूबसूरत कोई लड़की है । गुलाब को अपनी सूरत पर नाज था घमण्ड था । दर्जनों बार आइने में अपनी सलोनी सूरत देखकर वह स्वयं पर मोहित हो चुकी थी ।

"अच्छी है भाभी !....मगर तुमसे अच्छी नहीं..." कहने को तो विकल कह गया, मगर बाद को उसे ख्याल आया कि अफजल के सामने उसे ऐसा नहीं कहना चाहिये था ।

अपनी प्रशंसा सुन गुलाब का बैठा हुआ दिल कुलाँचे मार कर प्रसन्न हो उठा, फिर भी उसने कह ही दिया—"अरी अम्मा ! मैं कौन जन्नत की हूर हूं ।...."

"खुदा कसम ! तुम बहुत खूबसूरत हो, गुलाब !" अफजल ने हँसकर कहा । मगर कहते-कहते एकाएक उसकी मुखाकृति कठोर हो गई और उसपर घृणा की परत चढ़ गई । अवश्य ही उसने सारी घटनाएँ देखी थीं और उसको भूल जाने का प्रयत्न करने पर भी वह भूल न सका था ।

यह सच था कि अफजल चाहे सारी दुनिया के लिये निशाच हो, मगर विकल के लिये वह मनुष्य था और गुलाब के लिए वह बिना खरीदा हुआ गुलाम था। जो शख्श, थोड़ी-सी रकम लालच में बड़ा-से-बड़ा गुनाह कर सकता था, आदमी की तक ले सकता था, वही इन दोनों के लिए, गुलाब और विकल लिए, मिट्टी का बेजान पुतला मात्र था। जिससे दुनिया की भी बदजाती अछूता न बची थी, उसके अन्तस्थल के एक को में सहृदयता विराजमान थी। आजतक उसने कभी किसी को नहीं सताया, किसी औरत की अस्मत नहीं लूटी, किसी पर अपनी अंगुलियाँ नहीं आजमाई थीं। वह कठोर था, भयं था, केवल उनके लिए जिनके पास निजी खर्च से ज्यादा पैसे थे.

उसने कभी बेवसों को नहीं सताया था, मगर एक बार भी धोखा खा ही गया था। उस गलती के लिए आज भी उसे पश्चात्ताप है। अनजाने में ही उसने एक दुखी आत्मा के साथ कटुपरिहास किया था। वह कहानी भी विचित्र ही है—

आज से सात महीने पूर्व, इसी बनारस शहर में मैदागिन पर एक युवक रिक्शे पर से उतरा। उस युवक की वेशभूषा यद्यपि सभ्यों की-सी थी, परन्तु सभ्य कहे लाने वालों जैसा उसका हृदय शून्य नहीं था। शून्य की जगह करुणा विराजमान थी। उस रिक्शेवाले को पैसा देने के लिए युवक ने अपना मनीवेग निकाला एक विशाल आकृति वाला आदमी पास ही खड़ा था उसके सर पर बड़े-बड़े बाल थे, जिसपर लखनउवा दुपल्ली टोपी पड़ी थी। बदन पर नैनसुख का कुरता।

मुसलमानी ढंग का वास्कट और पैरों में चूड़ीदार पायजामा !...वह कोई मुसलमान गुण्डा-सा लग रहा था। उसकी काली आँखें भयानक तरह से चमक रही थीं। वह था अफजल—बनारस का विख्यात गिरहकट ! उसके नाम से बहुतेरे वाकिफ थे, मगर सूरत से नहीं।

अफजल ने देख लिया कि युवक के मनीवेग में दस रुपये का

एक नोट है। उसने मन-ही-मन कुछ सोचा, फिर युवक के पास आकर बोला—"बाबू साहब! दस और दस कितने होते हैं...."

"बीस..." युवक ने उत्तर दिया।

"बीस कैसे हुए, बाबू?...दस और दस तीस होते हैं..." अफजल ने उत्तर दिया।

युवक ने आश्चर्य से इस विचित्र जानवर की ओर देखा, जो दस और दस को तीस कह रहा था, फिर उसने कोमलता से कहा—"नहीं भाई! बीस ही होता है।"

"बीस कैसे होता है—तीस होता है..." अफजल की आवाज कुछ तेज हो गई, जिससे दो-चार राहगीर पास आकर खड़े हो गये।

युवक झल्ला पड़ा—"बीस होते हैं जी! क्या बक-बक लगा रक्खा है। तुमने?"

"आप गलती कर रहे हैं तीस होते हैं—" अफजल ने कहा।

"नहीं बीस!..."

"नहीं तीस!" अब अफजल जोरों से चिल्ला पड़ा। उसे तो अपना काम बनाना था। ऐसे-ऐसे अनुभवहीन कितने ही युवकों को वह चकमा दे चुका था।

"क्या है भाई?..." पास ही खड़े हुए एक आदमी ने अफजल से पूछा।

'बात यह है साहब!..." अफजल बड़े आत्मीय ढंग से बोला—"इन साहब ने मुझसे वक्त जरूरत पर तीस रुपये उधार लिये थे, अब जब देने का वक्त आया है, तो कहते हैं बीस, और मैं कहता हूँ तीस..."

युवक क्रोधित हो उठा—"झूठा, दगाबाज कहीं का!"

"खुदा कसम! गुस्सा न दिलाइये बाबू साहब! दगाबाज आप जैसे होते होंगे...अच्छा लाइये, बीस ही रुपया सही...." अफजल ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

युवक समझ गया कि यह धूर्त है। उसने देने में आनाकानी की, मगर अफजल कब छोड़ने वाला था। उसने युवक के

मनीबैग वाले दस रुपये और बाकी दस रुपये के बदले में उसको कलाई-घड़ी लेकर ही दम लिया।

"यदि इससे तुम्हारी भूख मिटती है, तो ले जाओ……" कहते-कहते उस युवक की आँखों में आँसू छलछला आये, परन्तु

दस रुपये का नोट और फैन्सी कलाई घड़ी लेकर अफजल आगे बढ़ा, मगर पग-पग पर यही सोचता जा रहा था कि यह उसका भ्रम है या वास्तव में उस युवक की आँखों म करुणाजनित आँसू थे। जितने कदम वह आगे बढ़ता था, उतनी ही बार उसका हृदय वापस चलने के लिये उसे धक्का दे रहा था।

उसके कठोर हृदय के किसी कोने में सिसकती करुणा विस्फोट कर उठी। उसकी मुखाकृति पर व्याप्त भयंकर क्रूरता काफूर की तरह उड़ गई और वह उल्टे पाँव वापस लौटा। देखा युवक सड़क के किनारे अभी तक खड़ा है। उसकी आँखें गीली हैं। अफजल उसके पास तक चला आया। आज जीवन में प्रथम बार उसे अपने में शिथिलता का बोध हो रहा था। उसने चुपचाप वह घड़ी और नोट युवक के हाथ पर रख दिये।

युवक उन्हें लौटाते हुए बोला--"ले जाओ भाई! ये चीजें तुम्हारी हैं…मैंने तुमसे बीस रुपये उधार लिये थे न! ले जाओ ……" कहकर युवक ने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया, शायद उसे रोना आ गया था।

अफजल पानी-पानी हो गया–"तुम्हें मेरी वजह से तकलीफ हुई, मुझे माफ कर दो, मेरे भाई! मैं नहीं जानता था कि…" अफजल को भी रोना आ रहा था, उसका गला भर आया था और आगे के शब्द भीतर घुटकर रह गये थे।

वातावरण करुण हो गया था। युवक अस्फुट स्वर में बोला "ले जाओ भाई! तुम्हे शायद मुझसे भी ज्यादा तकलीफ है..."

"मुझे कुछ भी तकलीफ नहीं…जरा भी नहीं…"

"बगैर तकलीफ के, बगैर जरूरत के ही तुमने एक दिलजले का दिल जलाया, मैं नहीं मानसकता…तुम लेजाओ!" युवक

कहकर वहां से जाने के लिए मुड़ा।

अफजल ने उसका हाथ पकड़ लिया—"मुझे माफ कर दो मेरे भाई ! बहुत रंजीदा मत हो, चलो मेरे साथ...मैं हैवान हूँ, तुम मुझे इन्सान बनाना।

वास्तव में आफत का मारा हुआ वह युवक अत्यन्त भावुक था। अफजल के हृदय की स्वच्छता का परिचय पाकर वह प्रसन्न हो उठा। उस खूँखार व्यक्ति में सहृदयता का आभास मिला। उसे एक सहारे की आवश्यकता थी। उसने अफजल के घर जाना स्वीकार कर लिया। उस गरीब मुहल्ले में जाकर उसने सभ्यों की पोशाक उतार कर यत्नपूर्वक अफजल की सन्दूक में रख दिया और स्वयं भी गरीबों की पोशाक धारण कर ली। कुछ दिनों में वह गुलाब और अफजल से हिल-मिल गया। वह पढ़ा-लिखा आफत का मारा नवयुवक, अब दीन-हीन गरीब रिक्शा-वाला बनकर वह रिक्शा खींचने लगा था। अफजल ने रुपये जुटाकर उसके लिए एक अच्छा-सा रिक्शा खरीद दिया था। वही युवक था, यह विकल !

●

४

"सरकार !" बगीचे का ड्योढ़ीदार खड़ा था, हाथ जोड़े हुए।

"क्या है ?" रायबहादुर निहालचन्द ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। वे अभी-अभी स्नान करके बैठक में आकर बैठे थे और जरूरी विषय पर विचार कर रहे थे।

"सरकार बगीचे में....." ड्योढ़ीदार डर से काँपते हुए कहा "खून हो गया है।"

"खून...!" रायबहादुर चौंक पड़े—"किसका खून ?" वे तेजी से उठकर ड्योढ़ीदार के सामने चले आये !

"खुद चलकर देख लें, सरकार !"

"किसका खून हुआ है? तू साफ-साफ बोलता क्यों नहीं? देख बेवकूफ ! अपना बदन जरा देख ! पत्ते की तरह काँप रहा है।"

रायबहादुरकी घुड़कीसुनकर ड्योढ़ीदार का होस कुछ ठिकाने आया। वह बोला—"अभी-अभी पास के एक कुत्ते ने आकर अपनी पालतू बिल्ली की गरदन मरोड़ दी है, सरकार !..."

रायबहादुर हँस पड़े ड्योढ़ीदार की बेवकूफी पर।

रायबहादुर निहालचन्द मिर्जापुर के माने-जाने रईसों में गिने जाते थे। गरीब-अमीर सबकी जुबान पर उनका नाम था। उनकी अवस्था लगभग साठ साल की थी। सहृदय थे, दुखियों का दुःख दूर करने के लिये सदैव कटिबद्ध रहते थे। अपने जीवन में उन्होंने केवल एक भूल की थी—वह यह कि इस वृद्धावस्था में, उन्होंने बीस वर्ष की एक युवती से शादी कर ली थी,। युवती अत्यन्त चंचल एवं अपूर्व सुन्दरी थी। नाम था उसका रसना।

अभी रायबहादुर बैठे ही थे कि एक सज्जन ने कमरे में प्रवेश कर उन्हे अभिवादन किया।

"अफसोस आपका काम नहीं हो सकता...." रायबहादुर ने कहा—"मेरी पत्नी रसना दो दिन हुए बनारस गई है--मेरी पहली पत्नी का लड़का अनूप वहीं यूनियन कालेज में पढ़ता है, उसे ही देखने गई है--आप दूसरे दिन आने का कष्ट करें।"

वे सज्जन उनकी बात की अपेक्षा कर, एक कुर्सी पर बैठ गये और अत्यन्त आत्मीय ढंग से पूछ बैठे—आपके लड़के और आपकी पत्नी रसना में कैसे पटती है ?"

"खूब पटती है-खूब ! अनूप नई अम्माँ को खूब चाहता है—" कहते-कहते एका-एक न जाने क्यों रायबहादुर एकदम गम्भीर हो गये। एक दीर्घ निःश्वास के साथ एका-एक मुँह से निकल गया—"ओह, विकल तू कहाँ होगा···!"

"यह आपने किसका नाम लिया ?"—उस सज्जन ने पूछा। यद्यपि रायबहादुर के मुँख से निकली 'आह' अस्पष्ट थी, फिर भी उन सज्जन ने सुन ही लिया।

"यह विकल कौन है ?····" उस सज्जन ने पुनः पूछा–"क्या तो नहीं, जिसकी गिरफ्तारी के लिए अखबारों में दो हजार ईनाम निकला है और जिसने आपके यहाँ से पचास हजार के चुराये थे ! वही !····वही !"

"जी हाँ. वही ! वही !"

"उसके लिए आपके हृदय में इतनी सहानुभूति क्यों है ?" सज्जन को आश्चर्य हुआ।

"वह चोर नहीं था--वह चोरी नहीं कर सकता। केवल परिस्थितियों के कारण उस पर चोरी का अपराध लग है····" कह कर रायबहादुर ने एक ठंडी साँस ली और फिर -- वह बड़ा नेक लड़का था। भला जिसे लड़कपन से ही -पोसा, पढ़ाया-लिखाया उसका स्वभाव भी न पहचान ता मैं !"

"क्या वह आपका आत्मीय था ? —"

"आत्मीय ही नहीं, वह मेरा कलेजा था। मुझे वह अपने से भी ज्यादा प्यारा था। अनूप और वह साथ ही साथ पले, और बड़े हुए। अनूप को और उसको मैं एक दृष्टि से देखता । यह कभी सोचा नहीं कि अनूप अपना है और वह पराया····"

दो-एक बातें और पूछने के बाद वे सज्जन चले गये।

* * *

'यूनियन कॉलेज' अपनी विशेषताओं के लिए विख्यात था। हजारों छात्र-छात्राएँ विद्याध्ययन करती थीं। कॉमन रूम में सब छात्र, अखबार पढ़ने की फिक्र छोड़कर किसी चर्चा में थे। केवल एक लड़की, कोने में एक कुर्सी पर बैठी हुई पत्रिका देखने में तल्लीन थी। उसे उनकी चर्चा में तनिक भी न थी। वह एकाग्र मन से उस पत्रिका के किसी लेख अध्ययन कर रही थी।

कॉमनरूम में एक जगह तीन चार छात्राएँ खड़ी हुई बातें कर

रही थीं। एक ने कहा—"अरी ! ऐसी बातें तो जासूसी उपन्यास
में पढ़ा करती थी। अब आँखो से देख भी ली...."

दूसरी ने कहा —"मगर....मगर भाई ! कान्ताकुमारी कह
है ? आज सब लोगों को छोड़कर किधर चली गई"

"वह है...." तीसरी ने कहा —"उस कोने में बैठी हुई को
भयानक स्टडी कर रही है....चलो, देखें तो जरा !"

सभी उस कोने की ओर चली, जहाँ वह अकेली बैंठी हु
पत्रिका पढ़ रही थी। पास जाकर क लड़की ने पूछा—"क्या
पढ़ रही हो कान्ता ?...."

दूसरी कान्ता के पीछे से उचक कर पत्रिका देखने लगी—
"यह तो 'उजाला' का नवीन अंक है....क्या खूब !"

"कान्ताकुमारी पढ़ रही हैं श्रीयुत 'व्यथित' की लिखी
हुई 'अधूरी कहानी'....वाह वाह ! क्या कहने ?" तीसरी ने
कहा। कान्ता झिझककर उठ खड़ी हुई।

"क्यों डार्लिङ्ग नाराज हो गईं क्या ?"—चौथी ने कान्ता
की ठुड्डी पकड़कर हिला दिया—"हमारी कान्ता 'व्यथित' जी के
लेख बहुत पसन्द करती हैं....तुम लोग नहीं जानतीं ?"

'नहीं भाई, हम लोग क्या जाने, पर जहाँ तक मेरा अनुमान है
'अधूरी कहानी' का साथ देकर 'पूरी कहानी' करने की फिराक में
है...." पहली ने व्यंग कसा।

शरारती लड़कियों ने अन्ततः कान्ता के हाथ से वह पत्रिका छीन
ली और देखते-देखते उसे लेकर वहाँ से चल पड़ी। कान्ता कॉमनरूम
के उस कोने में पुनः अकेली रह गई, मगर अब उसे वहाँ रहना
अच्छा नहीं लगा, क्योंकि पत्रिका छीन ली गयी थी।

'उजाला' एक अच्छी साहित्यिक पत्रिका थी ! उसमें अच्छे-अच्छे
लेखकों के लेख निकला करते थे। कान्ता को इस पत्रिका से कुछ
आन्तरिक सहानुभूति हो गयी थी। इस पत्रिका में उसके लिए सबसे

ाकर्षक वस्तु होती थी श्रीयुक्त 'व्यथित' द्वारा लिखी हुई कहानियाँ। उसकी कहानियों में साहित्य के साथ-साथ व्यथा की अनुभूति रहती थी, जो पाठकों के हृदय को करुणा से भर देती थी। उसकी कहानियों में दैनिक-जीवन की नैराश्यपूर्ण घटनाओं का चित्रण होता था, जिन्हे ढ़कर मनुष्यमात्र बिभोर हो उठता था।

'व्यथित' की कहानियों में जो मार्मिक चरित्र-चित्रण होता था, उससे कान्ता अत्यधिक प्रभावित हुई थी। उस सफल लेखक के हर एक वाक्य से पूर्णता का आभास मिलता था। जो कुछ वह लिखता था, वह पूर्ण था--आश्चर्यजनक था! कान्ता का हृदय चाहता था कि वह उस महान कलाकार के चरणों पर अपना सारा प्यार अपनी सारी सहानुभूति उड़ेल दे। परन्तु कहाँ था वह कलाकार? हाँ था हिन्दी साहित्य का वह क्रान्तिकारी कहानी-लेखक? वह तो ात था। कान्ता इसे नहीं जानती थी। कोई उसे नहीं जानता था। ने कभी जानने की इच्छा नहीं की थी। वह लेखक केवल के पृष्ठ पर ही प्रकट होता था। लोग उसकी कहानियाँ पढ़- उसके आन्तरिक हृदय का दर्शन कर लेते थे, फिर जरूरत क्या उसका हाड़-चाम से युक्त बाह्य स्वरूप को देखने की। लेखक का तत्व उसकी लेखनशैली से ही प्रकट होता है, न कि उसके प से।

कान्ता बहुत देर तक विचार-निमग्न होकर कॉमनरूम के कोने बैठी रही। सोचती रही-लेखक के हृदय में विचारों का कितना सागर है जो कभी छिछला नहीं होता, हमेशा भरा-पूरा रहता हमेशा भिन्न-भिन्न चरित्र चित्रण उस गहराई में से निकलते रहते —काश! मैं भी ऐसा कर पाती।

"माफ कीजियेगा!"--कोमल स्वर में किसी ने कान्ता का ध्यान ग किया। कान्ता की तन्द्रा, जिसने अब तक अर्धस्वप्न का रूप कर लिया था, टूट गई।

"ओह ! मिस्टर अनूप कुमार !...." उसके मुख से पड़ा। आगन्तुक नवयुवक छरहरे बदन का सुन्दर युवक था। का सहपाठी था वह। उसकी अवस्था २०-२२ साल से अधिक थी। वह कीमती अंग्रेजी पोशाक पहने था। चेहरे पर सरलता क्रूरता का सम्मिश्रण था। केवल उसकी सूरत देखकर यह कठिन था कि इस युवक के हृदय में सुधारस भरा है या हलाहल!

"आपको मैंने तकलीफ दी, माफ कीजियेगा !..." अनूप लापरवाही से कहना शुरू किया—"बात यह थी कि उधर से हुई मिस प्रबोध मुखोपाध्याय ने आपकी यह पत्रिका मुझे दी और आप तक पहुँचा देने का आग्रह किया...." कहकर अनूप ने कोट जेब से 'उजाला' का नवीन अंक निकाला, जिसे कान्ता की छीन ले गई थीं—"यह पत्रिका आपकी ही है न ?..." पूछा उ और उस पत्रिका को कान्ता की ओर बढ़ा दिया।

"जी हाँ, धन्यवाद !...." कान्ता ने कहा और पत्रिका ले

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इसमें से कौन-सा लेख अधिक पसन्द किया ?...." कहता हुआ वह भी कान्ता के बगल एक कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"यही सवाल आपसे किया जाय तो ?..." अनजाने ही के मुख पर मुस्कान बिखर गई, और उस मुस्कान से घायल अनूप का दिल टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया।

"मुझसे आप पूछती हैं कि मुझे इसका कौन-सा लेख आया ?....खूब ! मगर मैं इसे पूरा नहीं पढ़ सका हूँ, केवल क्लास दस मिनट तक बैठकर 'व्यथित' की 'अधूरी कहानी' नामक ही पढ़ पाया हूँ...."

"कैसी है कहानी ?" उत्सुकता से कान्ता ने पूछा।

"यदि मैं यह कहूँ कि वह कहानी दिल पर तीर से भी गहरा जख्म कर देती है तो अत्युक्ति न होगी...." अनूप ने उत्तर दिया "आशा है आप भी अपनी राय देने की कृपा करेंगी।"

"सब कुछ तो कह दिया आपने ? मेरे लिए अब बचा ही क्या ?...."

उसी समय एक दूसरा युवक आ गया और बोला—"मिस्टर ूप कुमार ! फोन पर तुम्हें कोई बुला रहा है...."

अनूप टेलीफोन पर चला गया। कान्ता ने अपनी किताबें समेटी घर जाने के लिये प्रस्तुत हो गई। बाहर आकर उसने अपनी चारों ओर घुमाई अपने परिचित रिक्शेवाले को देखने के लिए। कुछ दूर पर खड़ा था अपना रिक्शा लिए। कान्ता को देखते ही रिक्शा लेकर उसके पास आ गया। कान्ता के चेहरे पर प्रसन्नता अस्पष्ट रेखा दौड़ गयी। उसने कहा—"आज आये हो ?....कल थे, विकल ?"

वह रिक्शावाला विकल ही था। उसके साथ कान्ताकुमारी की सहानुभूति थी। यद्यपि कान्ताकुमारी के पास घर की बग्घी, परन्तु वह सदैव इस रिक्शेवाले के ही रिक्शे पर चढ़ना पसन्द थी। विकल भी आवश्यकतानुसार कान्ता के पास उपस्थित जाता था। कान्ता को इस गरीब रिक्शेवाले के प्रति सहानुभूति और विकल को इस अनुपम सुन्दरी धनिक कन्या के प्रति श्रद्धा, प्रेम था और न जाने क्या-क्या था ?

"कल न आ सका—ऐसे ही !" विकल ने उत्तर दिया। कान्ता वह कैसे बताता कि कल एक रहस्यमयी युवती के फेर में पड़कर आ सका था।

कान्ता उसके रिक्शे पर आ बैठी। विकल रिक्शा लेकर चलने और वह विचारों में बहने लगी—कितना गरीब और कितना है, यह विकल....! चन्द पैसे की मजदूरी में कैसे अपना खर्च होगा ! जितने पैसे वह रोज कमाता है, उसके चार गुने तो अपने लिए हेयर लोशन में खर्च कर देती है। मनुष्य के जीवन अमीरी और गरीबी व्यवधान बनकर क्यों खड़ी हो जाती है ? चाम का यह मनुष्य कोई अमीर होता है, कोई गरीब !

ऐसा क्यों ? क्या यह समाज की शोषण-नीति का दुष्परिणाम है? यदि समाज में एक च्च और एक निम्न न हो, तो उसका चक्र न चले ? लगता है मनुष्यों ने, समाज ने, अपने आराम के लिए अमीरी और गरीबी की सृष्टि की है।

यद्यपि कान्ता को गरीबों के दैन्य-जीवन का अनुभव न था फिर भी अपनी कल्पना-शक्ति से उनके जीवन का जैसा वीभत्स चित्र वह खींचती थी, उसे स्मरण कर स्वयं हीं काँप उठती थी। गरीबी एक अभिशाप है — वह अक्सर सोचा करती थी। गरीब दुनियां में आह-आह करते हुए दिन गुजारते हैं, और सी-सी करते हुए रातें। गरीबों की बातें सोचते-सोचते उसकी आत्मा अमीरों के प्रति विद्रोह से भर जाती। वह दाँत पीसने लगती। कभी उसे स्वयं अपने ऊपर ही क्रोध आ जाता कि वह क्यों अमीरों की तरह रहती है ? क्यों अमीरों के-से कपड़े पहनती है ? क्यों नहीं इस गरीब रिक्शेवाले की तरह फटे-पुराने वस्त्र पहनती है ? क्यों नहीं बालों में हेयर लोशन की जगह तिल का तेल लगाती ?

उफ ! यह रिक्शावाला भी कितना अभागा है ? अकेला है— संसार में इसका कोई नहीं। कौन इसे प्यार करता होगा ? कौन इसे खाना बनाकर खिलाता होगा और कौन इसे बीमार पड़ने पर दवा देता होगा ?— कहीं कुछ भी नहीं। वह स्वयं अपने हाथ से सब कुछ करता होगा। खाना पकाता और बरतन माजता होगा — उफ सोचते-सोचते कान्ता का सिर जैसे फटने लगा। उसके हृदय में कभी-कभी विचार उठते कि वह गरीब रिक्शेवाले के घर जाकर उसके अकेलेपन को दूर कर दिया करे, परन्तु...

वह आप ही हँस पड़ी अपने इस विचार पर। उसका मकान नजदीक आ गया था। वह रिक्शे पर से उतर पड़ी और विकल के हाथों पर पैसे रखती हुई बोली—"एक घण्टे बाद फिर आ जाना— सिनेमा देखने चलूँगी...."

"बहुत अच्छा !...." कहकर विकल चलने लगा। आखिरी बार उसके नेत्र कान्ता की ओर उठे। उसे अपनी आँखों में

का अजीब प्रकार का स्नेह और आकर्षण देखा। देखते ही उसका मन उल्लास से भर उठा। उसने लज्जा से दृष्टि नीची कर ली चुपचाप चला गया। कान्ता सी स्थान पर मूर्तिवत खड़ी, उसे तक देखती रही जब तक वह रिक्शा-सहित जनसमुद्र में विलीन हो गया।

मानव-हृदय दुर्बलता का आगार है। आज कान्ता को न जाने इस अकेले रिक्शेवाले पर बड़ी करुणा आ रही थी। यदि वह कर सकती तो जान देकर भी इस अभागे रिक्शेवाले का दुःख कर देती।

* * *

आइना एक ऐसी हेय वस्तु है, जो केवल रूप की प्रोज्वलता कर सकता है, हृदय की प्रच्छन्न कालिमा नहीं। परन्तु मनुष्य वास्तविक परिचय तो उसके हृदय से मिलता है, रूप से नहीं। और हृदय बाहर-भीतर कभी एक से नहीं होते। यही तो नियति सृजन का चक्र है।

हनीमून होटल के एक सजे हुए कमरे में एक बड़े से आइने के सामने खड़ी, सफेद चेहरा और काले दिल वाली रसना, अपनी वेष-भूषा का निरीक्षण कर रही थी। उसके हाथ में 'पफ' है, जिसे अपने कपोलों पर कहीं-कहीं फेर कर, प्रकृति-प्रदत्त अनुपम सौन्दर्य को और भी देदीप्यमान करने में व्यस्त है। शृंगार ही तो स्त्रियों का अनुपम अस्त्र है, जिसके द्वारा वे चैतन्य को पागल, पागल को चैतन्य और न जाने क्या-क्या बना देती हैं। स्त्रियों का रूप ही एक ऐसा प्रलोभन है, एक ऐसा जाल है कि तनिक-सा संकेत पाते ही न जाने कितने मनुष्य मछली की तरह उसमें आ फँसते हैं - न जाने कितने फतिंगे उस रूप-शिखा पर मर कर जीते हैं और जी-जी कर मरते हैं।

रसना के पास हलाहलपूर्ण सौन्दर्य था। उसके श्वेत आवरण के पीछे निहित थी अगम विष-राशि ! यदि मनुष्य के नेत्र पारदर्शक होते तो रसना का प्रच्छन्न आन्तरिक रूप, जिसपर उसके सौन्दर्य ने अपनी प्रभा बिखेरकर उसकी कलुषता पर आवरण डाल रखा

था, तुरन्त प्रकट हो जाता। परन्तु अफसोस कि मनुष्य ने आँखें नहीं पायी। उसने केवल रूप पर मरना सीखा—दिल नहीं। शीशा पारदर्शक होते हुए भी जब दिल की कालिमा नहीं कर सकता, तो मनुष्य की आँखें कहाँ तक सफल हो सकती हैं!

युवावस्था के दिनों में सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच है? उसमें शराब-सी मादकता भर जाती है। सौन्दर्य प्रेमियों के वह मादकता मधुर एवं आल्हादकारी होती है। उस मादक को यदि आधुनिक उपकरणों द्वारा और भी प्रोज्वल कर दिया तो फिर बात ही क्या? पाउडर, लिपस्टिक, यह और वह! न कितनी वैज्ञानिक वस्तुएँ हमें घृणित प्रतीत होती हैं—हम कि इनका प्रयोग करने पर सौन्दर्य द्विगुणित होकर दाहक हो है, तभी हम घर की सीधी-सादी पाउडर-विहीन नारी को वेश्याओं के पाउडर मण्डित चेहरे पर जल मरते हैं—तभी तो उस कृत्रिम-सौन्दर्य की चकाचौंध में अन्धे बन सर्वस्व को आहुति दर-दर के भिखारी बन जाते हैं। जानते हुए भी अनजान बन हैं। मनुष्य का ज्ञान ही अज्ञान का द्योतक है।

रसना का ध्यान अपने सौन्दर्य को अक्षुण्य रखने में सचेष्ट था। तभी तो बीस वर्ष की अवस्था में जब कि हमारे देहातों नारियाँ लुजलुजे शरीर वाली होकर कष्टदायी बुढ़ापे का दैन्य करने लगती हैं, परन्तु रसना पूर्णतया स्वस्थ्य दीख पड़ती थी।

युवावस्था के आरम्भ के दिन युवतियों के लिये बड़े ही होते हैं! उनमें अनेक मधुर कल्पनाएँ एवं आकांक्षाएँ होती हैं। रसना के लिए यह सब कुछ भी नहीं था। उसकी शादी साठ के वृद्ध रायबहादुर निहालचन्द से हुई थी। उसके माता पिता ने जर्जर वृद्ध के साथ शादी करके यह आशा की थी कि उनकी

सुख से रहेगी—परन्तु रसना के लिए सुख कहाँ था ! पति के सैकड़ों झुर्रीवाले मुख में या उसके अस्थिपंजर में ?

पहले-पहल सोलह वर्ष की अवस्था में अपनी छलकती जवानी और अनुपम सौन्दर्य लिये जिस समय वह अपने बूढ़े पति के घर में आयी थी, उस समय उसके हृदय में अगणित महत्वाकांक्षाएँ हिलोरें मार रही थी, मगर उसकी आशा पर तुषारपात हो गया, जब कि वृद्ध रायबहादुर ने उसके पास आकर और उसे छाती से लगाकर पुकारा—"रानी !"—तो वह काँप उठी ! उसके बाप से भी अधिक अवस्था का यह पुरुष उसे 'रानी कहे ! कितना अन्धा हो गया है, पुरुष समाज ! उसका हृदय तीव्र वेग से धड़कने लगा। वह नन्हीं गुड़िया की तरह बुड्ढे की छाती से जा लगी। मगर वह सुख कहाँ जो एक युवक की प्रणायिनी बनकर वह पाती ?

उस दिन से रसना के हृदय में समाज के प्रति विद्रोह की भावना उठ खड़ी हुई। अपना विनाश देखकर वह विचलित हो उठी। स्वाभाविक दाम्पत्य सुख-भोग की लालसा भड़कने लगी। वह युवती थी, सके पास मादक सौन्दर्य था, अपूर्ण लालसाएँ थीं, तड़पता हुआ यौवन था फिर भी विवश थी। अकस्मात् एक रात को जब कि काले-काले बादलों का आकाश पर भयानक नर्तन हो रहा था, उसने अपनी यौवन-निधि अपने एक नौकर के हाथ सौंपकर, जीवन का वास्तविक सुख पाया। धीरे-धीरे वासना का वेग बढ़ा और वही भोली रसना अब जिस किसी से भी सामने अपने यौवन का सौदा करने लगी। वृद्ध रायबहादुर निहालचन्द अपनी पत्नी के इस विश्वासघात से अनभिज्ञ थे।

कुछ महीने पहले रायबहादुर के मकान से रसना के पचास हजार के गहने चोरी चले गये थे। चोरी का अपराध उस विकल पर लगाया गया, जिसका लालन-पालन स्वयं रायबहादुर ने किया था। वास्तविक अपराधी कौन था ? यह रायबहादुर लाख चेष्टा करने पर भी न जान सके थे....चोरी होने के एक हफ्ते बाद रसना

द्वारा 'हनीमून होटल' का उद्घाटन हुआ, जिसका कर्ताधर्ता गया रसना का वही 'पंडित— जिसके हाथ उसने अपनी यौवन समर्पित कर दी थी। होटल का खुलना रायबहादुर को ज्ञात था। वे तो यही समझते रहे कि रसना अनूप कुमार की देख लिए बनारस अधिक जाती रहती है।

श्रृंगार करके ज्यों ही रसना घूमी कि उसने कमरे के दरवाजे पंडित को खड़ा पाया। पंडित कमरे के अन्दर आ रहा और बोला

"क्या हुजूर ने मुझे बुलाया है?"— रसना का मुंह लगा पर भी वह रसना को हजूर ही कहा करता था।

"नहीं तो!"— रसना ने कहा— "मगर अब आ गये दो-चार बातें करके जाओ...."

"बहुत अच्छा!— " "थोड़ी देर पहले हजूर फोन पर बातें कर रही थीं?" पूछा पंडित ने।

"अनूप के कॉलेज में फोन किया था। अब वह आ ही होगा। देखो, अनूप के आने पर कोई बेढंगी हरकत न कर यद्यपि अनूप सनकी-सा है, उसे अपने-पराये की कुछ परवाह रहती, फिर भी उसे अपने किसी कार्य से सन्देह का मौका नहीं

"क्या वह जानता है कि यह होटल आपका ही है?"

"नहीं, यह वह नहीं जानता और न तो यही जानता है चोरी गये हुए जेवरातों के बल पर ही यह होटल कायम हुआ वह तो केवल यही जानता है कि होटल मेरा परिचित है, और रस आकर मैं इसी होटल में ठहरा करती हूं।"

"अनूप से आप इतनी शंकित क्यों रहती हैं?...." पूछा— "वह तो बोदा लड़का है। जरा भी अक्ल नहीं है। भी समझा देंगी, वह खुशी से मान लेगा।"

"ठीक है तुम्हारा कहना – फिर भी होशियारी से रहना अच्छा है! साथ ही यह भी कोशिश करनी चाहिए कि वह अपने से अलग न होने पाये। वह राय बहादुर का एकमात्र उत्तराधिकारी है। उसे मिलाये रहने से सारा...."

"अपना ही होगा – यही न! खूब हुजूर, खूब!" पंडित ठठाकर हँस पड़ा "उसके साथ नम्र बनकर रहने में ही हमारा फायदा है, हुजूर! फिर अनुकूल समय मिलने पर इस छोकरे को भी चकमा दे दिया जायगा।"

"नई अम्माँ!" तभी किसी ने दरवाजे पर से पुकारा। रसना और पण्डित चौंक पड़े। देखा, दरवाजे पर अनूप खड़ा है हाथ में एक पुस्तक लिए हुए। उसका चेहरा शान्त था, जिससे यह नहीं ज्ञात होता था कि उसने किवाड़ों की ओट में छिपकर, रसना और पंडित की बातें सुनी हैं। लापरवाही की मुद्रा से वह कमरे के अन्दर आ रहा और बिना किसी हिचकिचाहट के आराम कुर्सी पर बैठकर पैर हिलाने लगा।

"अच्छे हो तो अनूप?" रसना ने पूछा।

"किसी तरह अच्छा ही हूँ, नई अम्माँ!...." अनूप ने अजीब ढंग से सर हिलाकर कहा, साथ ही उसकी दृष्टि दीर्घाकार पण्डित पर पड़ी। वह चौंककर इस प्रकार उठा खड़ा हुआ, मानो उसने कोई दानव देखा हो, परन्तु फिर तुरन्त ही कुर्सी पर बैठकर हँसता हुआ बोला—"अरे पण्डित, तुम यहीं हो?... वाह!"

"हाँ हुजूर यहीं हूँ!"--कहते हुए पण्डित ने अत्यन्त ही नम्रता का भाव प्रदर्शित किया।

"नई अम्माँ!" अनूप ने अपनी कोट की जेब से एक मुड़ा हुआ कागज निकाला--"आज मिर्जापुर से पिता जी का टेलीफोन आया है कि अपनी नई अम्माँ के साथ जल्द आओ। इधर मेरी परीक्षा हो रही है कैसे जा सकता हूँ...."

"रात को चलना ...सुबह वापस आ जाना...." रसना
कहा।

अनूप कुछ देर तक चुप बैठा रहा, फिर बोला—"नई
आदमी आदमी का खून क्यों पीता है? क्या बकरे या मुर्गे के
से उसकी प्यास नहीं बुझ पाती—" अनूप ने रसना की ओर
दृष्टि से देखा, मानो कोई बालक अपनी माता से अत्यन्त ही
प्रश्न पूछ रहा हो—'बोलो नई अम्माँ! या तुम्हीं बोलो पण्डित
बीस वर्ष का वह युवक एकदम बालकों जैसी बात कर रहा था

"क्या बोलूँ, हुजूर!..." आप स्वयं पढ़े लिखे हैं
ने कहा।

"खाक पढ़ा-लिखा हूँ। आजकल की यह निकम्मी पढ़ाई
अक्षर पहचान कर रट लेने की है। दुनियाँ को पढ़ने की
किताब पढ़ने से नहीं आती, पण्डित!...." कहते कहते
अनूप चौंक पड़ा—"नई अम्मा! वह आपके गले में कौन सा
लेस है? वही तो है जो चोरी चला गया था, फिर यह आपके
कहाँ से आया?...."

रसना का मुख पीला पड़ गया। पण्डित गिरते-गिरते
अनूप पुनः बोला—"तुम्हें क्या हो गया है, नई अम्माँ?....
तुम बाहर जा कर मुँह धो डालो। तुम्हारा मुँह पीला
गया है?...."

पण्डित बाहर चला गया। रसना ने अपनी भूल और
ठीक की, फिर बोली—"बात यह है अनूप!...उस नेकलेस
एक जोड़ा मेरे पास और था। एक चोरी चला गया,
यह है...."

"एक लड़की है नई अम्माँ!" अनूप ने तुरन्त ही दूसरी
छेड़ दी—'तुम उसे नहीं जानती होगी, उसका नाम है
कुमारी। बड़ी अच्छी लड़की है, नई अम्माँ!"

"तुम उसे कैसे जानते हो?" रसना ने पूछा। अब तक
अपना चित्त स्थिर कर लिया था।

"हाँ !...वह तो मेरी क्लासफेलो है, अम्माँ !....सेठ राकेश की लड़की है ! वे शहर के बहुत भारी बैंकर हैं। उनके पास में भर कर नोट और रुपये रखे जाते हैं। आज वह लड़की देखने जायगी। मैं भी जाऊँगा ! उसे भेंट देने के लिए, देखो, पुस्तक खरीदी है····" अनूप ने अपने हाथ की पुस्तक रसना को —"यह है 'व्यथित' का लिखा हुआ अनोखा उपन्यास। नाम है 'अभागे की दुनिया'। वह लड़की श्रीयुत 'व्यथित के उपन्यास कहानियाँ बहुत पसन्द करती है"

"और तुम भी तो उस लड़की को पसन्द करते हो न, अनूप ?" ा ने मुस्कराते हुए कहा—"तभी तो उसके पसन्द की पुस्तकें करते हो।"

अनूप यह बात सुनकर झेंप सा गया, परन्तु एक कुशल कलाकार उसने बात का रुख बदल दिया—"तो कल मिर्जापुर चलोगी अम्माँ ? पिताजी ने जो तार भेजा है····"

"चलना ही पड़ेगा····" रसना ने कहा— "हाँ तो क्या वह लड़की चाहती है, अनूप ?"

"देखो नई अम्मा ! पिताजी का व्यवहार मुझे बहुत अप्रिय है····" अनूप ने रसना की बात का कुछ भी उत्तर न देकर ही बात छेड़ दी--"उनका बात-बात में बिगड़ जाना- बात-बात हो जाना, बात-बात में नसीहतें देना, बात-बात में····यानी सब मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता····"

"तुम्हारे पिता का व्यवहार तुम्हारे प्रति सन्तोषजनक नहीं है, तो तुम्हें इसका विरोध करना चाहिए····" रसना ने कहा। के सरल हृदय को उसने पिता के विरुद्ध उभाड़ना चाहा !

"मैं यह नहीं कहता कि उनका व्यवहार अनुचित हैं—मैं तो यह हूँ कि उनकी बकवास मुझे अच्छी नहीं लगती—तुम मेरा मत-गलत समझ गयीं, नई अम्मा !" हँसते हुए अनूप बोला।

"वे चाहे जैसे हों—मैं तो तुम्हारे लिए हूँ। मेरे रहते तुम्हें कि बात की तकलीफ नहीं हो सकती।"

"मैं तुम्हारे ही आसरे हूँ, नई अम्माँ! तुम्हीं मेरी माँ हो। अपने पुत्र के लिए जो कर सकती है, वह पिता नहीं कर सक क्यों नई अम्माँ। और देखो, तुमने कहा था कि दीवाली पर एक घड़ी मुझे खरीद दोगी···मगर हैं! तुम्हारी रिस्टवाच क्या हुई

"कल बाजार गई थी, किसी गिरहकट ने उड़ा ली। मुश्किल है। इस बनारस में तो घूमना कठिन हो गया है।" कहने लगी—"हाँ, कल बजार में तुम्हारा विकल मिला था····"

"विकल!···मिला था वह तुमसे? क्या करता है कल?····" सहज उत्सुकता से अनूप ने पूछा।

"रिक्शा खींचा करता है····"

"रिक्शा खींचा करता है?····" पहली बार अनूप के चेहरे करुणा झलकी। उसने एक बार सामने टँगी हुई घड़ी की ओर पुनः बोला—"वह रिक्शा खींचता है, सुनकर मुझे रोना आ नई अम्माँ! बहुत अच्छा है वह—मगर अच्छा होता तो तुम्हारे क्यों चुराता?···अगर चुरा ही लिये थे तो तुमसे माफी क्यों माँगी? भाग क्यों खड़ा हुआ?···क्या तुम बता सकती हो कि चोरी क्यों करता है, नई अम्मा?"

यद्यपि रसना अनूप के ऊटपटांग प्रश्नों को बहुत बार पहले सुन चुकी थी, परन्तु इस प्रश्न ने उसे हँसा दिया। कैसे समझाये इस नादान छोकरे को कि चोरी मनुष्य का मनोरंजन नहीं है, मनुष्य को विकट परिस्थितियों के वशीभूत होकर चोरी करनी प है। यों तो मानव-जीवन असह्य यातनाओं का आगार है, वज्र-सा हृदय लेकर सब कुछ सहन करता है, परन्तु कई

स्थतियाँ हैं जिसमें उलझकर मनुष्य विह्वल हो जाता है। और वह चोरी करने पर बाध्य हो जाता है।

मनुष्य चोरी करता है, परन्तु उसके विभीषिकापूर्ण परिणाम से नहीं सकता। एक बार चोरी कर लेने पर मनुष्य का हृदय बार-चोरी करने लगता है। इस प्रकार एक बार की चोरी, मानव की सबसे बड़ी कमजोरी बन जाती है।

की देर तक चुप देखकर अनूप पुनः बोला—"सहसा विश्वास नहीं होता कि विकल ने चोरी की होगी। अगर तुम हो कि स्वयं अपने नेत्रों से उसे चोरी करते देखा था तो फिर झूठ कैसे हो सकता है? आँख से देखी हुई बात तो सच ही करती है। जरूर यह सच हैं तभी तो जब विकल ने देखा कि पोल खुल रही है तो वह घर से भाग निकला और यहाँ रिक्शा खींचने लगा....उफ्! कितना दैन्य जीवन है? क्या इसी के लिए चोरी करता है?...." अनूप ने अपना मस्तक लिया—"वह रहता कहाँ है, नई अम्माँ?..." उसने पूछा।

"मैं क्या जानूँ? वह तो मुझे देखते ही भाग खड़ा हुआ—" ना ने उत्तर दिया।

"अच्छा, अब होस्टल जा रहा हूँ—कल शाम को आऊँगा। चलने के लिए तैयार रहना...." कहता हुआ अनूप उठ खड़ा।

"यह कुछ रुपये ले लो अनूप! अपने लिए एक बढ़िया सूट सिलवा ...." कहकर रसना ने अनूप के हाथ पर मनीबेग रख दिया। खुशी-खुशी लेकर चला गया। वह सरल-हृदय युवक अपनी का कालिमा-मण्डित हृदय न देख सका। उसने देखा, केवल सौन्दर्य! उसे ही माता का पवित्र प्रतिरूप समझ लिया—नादान युवक ही तो!

अनूप के चले जाने पर बड़ी देर तक रसना कुर्सी पर बैठी हुई जानें क्या सोचती रही, तत्पश्चात उसने घंटी बजाकर पण्डित को बुलाया। वह तुरन्त आ पहुँचा।

"देखो पण्डित...." रसना बोली—"अनूप का ढंग अच्छा नहीं दीखता। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि वह हम लोगों की सारी कारस्तानी जान चुका है। केवल दिखाने के लिए वह अनजान बना रहता है—"

"क्या यह सम्भव है, हुजूर ?" पंडित ने पूछा।

"सम्भव ही नहीं पंडित, एकदम निश्चित समझो..."

उसने घड़ी की ओर देखा। पाँच बज गये थे आज उसे सिनेमा देखने जाना था। रिक्शेवाले से उसने ठीक पाँच बजे आने को कह दिया था, परन्तु अभी तक वह आया न था। कान्ता धम्म से कुर्सी पर बैठ गई। फिर उठी, फिर बैठ गई। उसके मुख से सहसा निकल पढ़ा—"न जाने क्यों नहीं आया ?"

उसकी यह आवाज कुछ जोर से निकल पड़ी थी, यही कारण था कि कमरे के सामने से आते हुए उसके पिता सेठ राकेशरमण ने यह बात बखूबी सुन ली और कमरे के अन्दर आकर बोले—कौन नहीं आया, बेटो....?" किसकी प्रतिक्षा कर रही हो ?....कहीं जा रही हो क्या ?"

"आज सिनेमा देखने का विचार था, पिजा जी !...."

कान्ता ने कहा।

"बग्घी तैयार रखने को कह दिया है ?" सेठ जी ने पूछा।

"जी नहीं ! मैं रिक्शे पर चली जाऊँगी। गरीब रिक्शेवालों की भी कभी-कभी मदद करनी चाहिए, पिताजी ! यूँ तो बग्घी है ही...." कहती हुई कान्ता ने एक बार पुनः घड़ी की ओर देखा। इस समय पाँच बज चुके थे। यद्यपि शो का टाइम नहीं हुआ था, मगर कान्ता को कुछ शॉपिंग करनी थी इसलिए वह जल्दी ही चल देना चाहती थी।

निर्जीव घड़ी भी आज सजीव होकर दौड़ रही थी। कान्ता की उसे क्या चिन्ता थी ? उसने तो केवल चलना सीखा है। दिन की उज्ज्वलता में और रात्रि की प्रगाढ़ कालिमा में वह बराबर चलती रहती है, अबाध गति से, नियति के क्रूर चक्र की भाँति ! विश्राम की उसे तनिक भी आकांक्षा नहीं रहती।

निर्जीव वस्तुओं से भी मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है, परन्तु सीखता नहीं। यद्यपि मनुष्य के ही मस्तिष्क की उपज है, मगर क्या कभी मनुष्य ने यह सोचा कि घड़ी जैसी कर्त्तव्यपरायण वस्तु का आविष्कार करके भी उसने स्वयं कर्त्तव्यहीनता को अपनाया है, वह कितना घृणित एवं हेय है ?

"वह देखो - एक रिक्शा आ गया····" सेठ राकेश रमण बोले। कान्ता ने दरवाजे की राह से सामने सड़क पर देखा, परन्तु वह विकल नहीं था, वह था भयानक आकृतिवाला अफजल। कान्ता झट बाहर निकल आई। अफजल ने उसे सलाम किया बड़े अदब के साथ।

"हुजूर···" अफजल कहने लगा—"आज एकाएक उसकी तबीयत खराब हो गई। उसके सर में जोरों का दर्द है····तभी तो वह मजबूर हो गया, वरना 'खुदा कसम' वह जरूर आता हुजूर ! ···उसकी मजाल कि आप बुलायें और वह न आये !····"

"क्या उसकी तबीयत सचमुच खराब है ?"

"सच हुजूर ! सोलह आने सच ! सने मुझे भेजा है····खुदा कसम ! उसे आपकी खिदमत का बहुत ख्याल रहता है, गरीब परवर !····उसकी फिक्र न करें। गुलाब उसके पास मौजूद है। दोनों में खूब पटती है, हुजूर ! दोनों की बातें अजीब होती है। मैं सुनता-सुनता मगन हो जाता हूँ····आइये बैठिये ! देर हो रही होगी····"

कान्ता रिक्शे पर आकर बैठ गई। अफजल रिक्शा उठाकर धीरे-धीरे दौड़ चला ! कान्ता ने पूछा —"गुलाब कौन है जी ?"

यद्यपि कान्ता एक बार पहले भी पूछ चुकी थी, परन्तु न क्या समझकर वह पुनः पूछ बैठी।

"मेरी बीबी है, सरकार! विकल को खूब चाहती है, गाड़ीवाले बाएँ जा...." आखिरी बात अफजल ने एक गाड़ी से कही थी, जो बीच सड़क पर गाड़ी ले जा रहा था।

न जाने क्यों विकल के पास गुलाब का होना सुनकर को बेचैनी-सी महसूस हुई-डाह एवं वेदना मिश्रित ईर्ष्या भी हुई कितनी भाग्यशाली है गुलाब, जो विकल की सेवा कर रही है काश! वह भी किसी गरीब की सेवा कर उसे आराम पहुँचा कुछ परोपकार कर सकती! मगर कैसे कर सकती है वह सब? वर्ग एवं समाज का भीषण अभिशाप उसे भस्म न देगा!

कान्ता का युवक हृदय विकल का कष्ट सुनकर दर्द से उठा। उसे एक प्रकार की आन्तरिक पीड़ा-सी प्रतीत होने लगी अपने जीवन में उसने कितनी ही पीड़ाओं का अनुभव किया परन्तु यह पीड़ा उन सबसे भिन्न थी! यह पीड़ा थी एक हृदय युवती के अन्तस्थल में उत्पन्न होनेवाली मादक टीस! सुख भी था और पीड़ा भी।

"चौक आ गया, हुजूर!" अफजल ने कहा।

"और आगे चलो! बाँसफाटक!...." कान्ता ने कह दिया।

दो मिनट में रिक्शा बाँसफाटक पर 'नावेल्टी टाकीज' सामने पहुँच कर रुक गया। कान्ता उतर पड़ी और अफजल सिनेमा खतम होने पर पुनः रिक्शा लाने का आदेश देकर चली गई

उस दिन नावेल्टी टाकीज में 'दी डयूक ऐण्ड दी डान्सर' अंग्रेजी फिलम चल रही थी। अधिक भीड़ न थी। भीतर घुसते कान्ता ने फर्स्ट क्लास में बैठे हुए एक युवक को देखा—

"हलो मिस्टर अनूपकुमार....आप भी?" उसके मुखसे आ पूर्ण स्वर निकल पड़े!

"जी हाँ, जी हाँ...." अनूप सीट पर से झटके के साथ उठकर खड़ा हो गया—"बड़ी देर तक आपका इन्तजार करता रहा। जब आप नहीं आईं तो लाचार होकर अन्दर आ बैठा...."

"आपको कैसे मालूम था कि मैं आज सिनेमा देखने आऊँगी ?" कान्ता ने पूछा—"बैठिये आप खड़े क्यों हैं ?"

अनूप बैठ गया। कान्ता भी बगलवाली सीट पर बैठ गयी। अनूप ने एक बार सिनेमा हाल में बैठे हुए दर्शकों पर दृष्टि निक्षेप की, फिर अपने अगल-बगल दृष्टि डाली। फर्स्ट क्लास में अभी तक भीड़ बहुत कम थी। अनूप और कान्ता सबसे पिछली सीट पर बैठे थे।

"आपकी रिस्टवाच ने क्या बजाया है ?...." अजीब ढंग से अनूप ने प्रश्न किया—"मेरे पास रिस्टवाच नहीं है। आज ही नई अम्माँ ने कुछ रुपये दिये हैं—उससे सूट न बनाकर मैं एक रिस्टवाच खरीद लूँगा—तब जिस-तिस से पूछने की अशिष्टता से बच जाऊँगा...."

"इस वक्त आठ बज रहे हैं। यह आपके हाथ में कौन-सी पुस्तक है ?"

"यह है श्रीयुत 'व्यथित' की नवीन रचना "अभागे की दुनियाँ।" अभी केवल चार दिन हुए प्रेस से निकली है। आप 'व्यथित' की रचनायें बड़े चाव से पढ़ती हैं—मैं भी उनकी रचनाओं का आदर करता हूँ। इसलिए खरीद लिया...." अनूप ने वह पुस्तक कान्ता के हाथ पर रख दी—"इस पुस्तक का भाव आप मुझसे ज्यादा समझ सकती हैं। अतः आप इसे स्वीकार करने का कष्ट करें—यानी आप स्वीकार नहीं करेंगी तो मुझे हार्दिक दुःख होगा...."

कान्ता हँस पड़ी। अनूप की बातों में लड़कपन, अल्हड़ता और लापरवाही थी। वह इतनी बेतरतीबी से बातें करता था, मानों वह युवक नहीं, अब भी बालक है। कान्ता मुस्कुराती हुई

बोली—"मिस्टर अनूप कुमार ? आपकी इस कृपा के धन्यबाद !...परन्तु आपने इतना कष्ट क्यों किया ?"

"यह कष्ट है कान्ता देवी ? क्या अपने दिल की कर गु में कष्ट होता है। यह पुस्तक मैंने अपने पसन्द की खरीदी आपकी पसन्द और मेरी पसन्द एक ही है—है न ?...."

"मधुर शब्दों में धन्यबाद देकर, कान्ता ने अपनी आँखें पर गड़ा दीं।

× × ×

"कैसी तबीयत है ?"—किसी ने मृदु-स्वर में प्रश्न किया।

"विकल ने करवट ली। देखा, गुलाब अबतक उसके बैठी हुई विह्वल दृष्टि से उसे देख रही हैं। इस मुसलमान को अभागे विकल के प्रति असीम ममता थी। विकल की खराब होने की बात सुनकर वह धवरा उठी थी। विकल के करते रहने पर भी, घण्टों तक वह उसके सर पर तेल रही। विकल ने गुलाब की ओर प्यार भरी दृष्टि से देखा कहा - जाओ भाभी ! घर का काम देखो। अब मेरी ठीक है...."

"बड़े झूठे हो !" गुलाब बोली—"तबीयत ठीक है तो 'ऊह' क्यों कर रहे हो ?"

"अब कहाँ कर रहा हूँ, तबीयत इस समय एकदम ठीक तुम्हारे सर की कसम ! सच कहता हूँ...." कहते हुए हँस पड़ा।

"ऐ बाह...." गुलाब आँखों की पुतलियों को बाँयें कोने स्थिर कर, एक कटाक्ष करती हुई बोली—"मेरे सर की कसम अरी अम्माँ ! तुम बड़े शोख हो...."

"जाओ भाभी, अफजल भैया के लिए खाना पका दो.... वे आते ही होंगे। दस बज रहे हैं...." विकल बोला। इस रात के दस बज चुके थे। उस कमरे में केवल विकल और गु थे। एक छोटी सी मिट्टी के तेल की बत्ती, उस कमरे

...मापूर्ण वातारण पर विजय पाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही। बत्ती की मद्धिम रश्मि ने गुलाब की यौवन-रश्मि का ...गन कर उसके ललितांग शरीर को और भी आकर्षक बना था। उसकी सुन्दरता कामी पुरुषों के लिए वासना का साधन थी, परन्तु विकल के लिए तो उस सौंदर्य में मम... स्रोत प्रवाहित हो रहा था।

"तुम फिक्र मत करो भाभी! जाओ, अफजल भाई के लिए तो पका दो...." विकल ने पुनः कहा, परन्तु अधिक जोर बोलने के कारण वह जोरों में कराह उठा। गुलाब घबड़ा गई-क्या हुआ—" कहते हुए विकल के सर पर हाथ रखकर धीरे-दबाने लगी—"कहाँ है दर्द विकल?....सर का दर्द बढ़ रहा क्या?"

"नहीं भाभी! सर में दर्द नहीं है...." विकल ने उत्तर दिया

"तब कहाँ दर्द है...."

"कलेजे में?—"विकल ने कहा और गुलाब का सुकोमल अपने हाथ में लेकर कलेजे पर रख दिया। गुलाब चौक पड़ी के अचानक स्पर्श से—"अरी अम्मा! तुम्हारा बदन तो -सा जल रहा है—यह तुम्हें क्या हो गया है?"

"थोड़ी देर में ठीक हो जाऊँगा, भाभी?" विकल बोला—बुखार और खाँसी मुझे अक्सर परेशान कर देती है। जाओ.... ओ भाभी, जल्दी से खाना पका लो तुम...."

* * *

सिनेमा समाप्त होने पर, जिस समय अनूप के साथ कान्ता हाल से बाहर आई तो उसने सड़क के किनारे रिक्शे के स खड़े हुए दीर्घाकार अफजल को देखा। कान्ता ने अनूप से —"तो मुझे आज्ञा दीजिए, उम्मीद है कि कॉलेज में मुलाकात ..."

"मैं आपको आज्ञा देने योग्य नहीं हूँ, कान्ता देवी!....यदि मुझे एक दोस्त, यानी अभागा दोस्त समझकर मुझसे मित्रता

कर सकें तो...." अनूप ने कहा। मगर वाक्य पूरा होने के पहले कान्ता ने नमस्ते करने के लिए हाथ जोड़ दिये। अनूप ने भी नम कहकर अपनी राह ली।

कान्ता रिक्शे पर आ बैठी। अफजल ने रिक्शा उठा लि और कभी तेज, कभी धीमी गति से दौड़ने लगा। कान्ता मकान नगवा पर था। अफजल दुर्गाजी की तरफ से रिक्शा चला। शहर से कुछ दूर जाने पर सन्नाटा मिला। मकानो संख्या बहुत कम थी। सड़क के दोनों ओर दीर्घाकार वृक्षों कतारें खड़ी थीं। अफजल को इन बातों कीपरवाह न थी। वह रिक्शा लिए तेजी के साथ भागा जा रहा था। ऐसा प्रतीत था, मानो रात्रि के भयावने अन्धकार में कोई दानव किसी देवी अपहरण करके भागा जा रहा है।

"रिक्शा बायें कर लो, पीछे से कोई मोटर आ रही हैं— कान्ता ने कहा।

"इस वक्त यहाँ मोटर का आना बड़े ताज्जुब की बात है अफजल ने कहा—"मगर मोटर हीं तो है...." कहते हुए उसने बायें कर लिया।

विद्युत वेग से दौड़ती हुई मोटर, रिक्शे के दाहिनी ओर आगे निकल गई, मगर थोड़ी दूर जाकर झटके के साथ रुक तब तक अफजल भी रिक्शा लेकर मोटर के पास पहुँच गया।

"रिक्शा रोक दो!" मोटर में से किसी ने तेज आवाज कहा साथ ही उस पर से एक युवती उतर पड़ी। अफजल रि रोककर खड़ा हो गया। उसी क्षण उसकी दृष्टि उस युवती पर जो अभी उस मोटर से उतरी थी। वह चौंक पड़ा—"हुजूर आप सके मुंह से ताज्जुब की चीख निकल पड़ी।

युवती ने अफजल को गौर से देखा और पहचानने का किया। दूसरे ही क्षण वह न जानें क्यों काँप उठी? उसने

लया कि यही वह रिक्शेवाला है, जिसे उसने विकल समझ कर पीछा हुए भूल से पकड़ लिया था। युवती रसना ही थी।

"देखिए हुजूर !" अफजल की आवाज कुछ तेज हो गई—'आप एक बार पहले भी मुझसे मिल चुकी हैं....याद है न ?....'जरूर याद होगा, तभी तो....खुदा कसम ! यह आप की बेजा हरकतें। पहले भी बिना किसी काम के आपने मुझे छेड़ा था और आज। मैं बहुत बुरा आदमी हूं, हुजूर !....मैं सच कहता हूँ, मुझसे। आपके हक में ठीक नहीं...."

उस भयानक काले आदमी को देखकर युवती न जाने क्यों र उठी, मगर एक मिनट में ही उसने अपनी भंगिमा ठीक ली। बोली—'तुम हट जाओ सामने से, उस बार भी तुम काफी परेशान कर चुके हो...."

"मैं परेशान कर चुका हूं, वाह हुजूर !...." अफजल की दृष्टि मोटर के भीतर जा पड़ी। मोटर के भीतर के अन्धकार में जल को किसी मनुष्य की अस्पष्ट आकृति दृष्टिगोचर हुई। समझ गया कि रसना अकेली नहीं है।

"परेशान तो आप कर रही हैं. सरकार !—"

"तुम अपने को बहुत बहादुर समझते हो, क्यों ?"—रसना ने। इतनी रात को रसना किसी कार्य से बाहर निकली थी। रिक्शे का रंग पहचानकर उसने यही समझा कि शायद वह कल का ही रिक्शा है।

"अजी हुजूर !" हाथ झटक कर हँसा अफजल—"मैं तो एक इन्सान हूं, आप जरूर दिलेरी कर रही है !—खुदा कसम ! दिलेर औरत मैंने कभी नहीं देखी। मेरी गुलाब तो ऐसी पोक है, कि अल्लाह रे अल्ला !"

अफजल निर्भयतापूर्वक बात-चीत कर रहा था। उसे इस की तनिक भी खबर न थी कि मोटर के अन्दर से वह कद्दावर उतरकर ठीक उसके पीछे आ गया है और रसना के केत की राह देख रहा है।

"तुम नहीं मानोगे ? ..." रसना का यह आखिरी प्रश्न था।

"नहीं !....खुदा कसम, नहीं ! इसमें मानने की क्या बात हुजूर ?...." अफजल का यह कथन स्वाभाविक दृढ़ता लिए था।

"पण्डित लेना बढ़ के—"युवती चिल्ला उठी। उसी वक्त अफजल को ऐसा मालूम हुआ मानों ठीक सके पीछे कोई खड़ा है। वह घूम पड़ा, मगर उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया जब कि उसने एक विकराल छूरे को अपनी ओर बढ़ते देखा। कान्ता भय से चीख उठी।



५

रायबहादुर निहालचन्द ने अपने नौकर को बुलाकर पूछा—"अनूप नहीं आया ?"

"जी नहीं, हुजूर !" नौकर ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया।

"अब तक नहीं आये ?..." रायबहादुर निहालचन्द जोरों से तड़प उठे—"तार दिया गया, फिर भी नहीं आये वे दोनों !" वे दोनों से रायबहादुर का अभिप्राय, रसना और अनूप से था।

नौकर चला गया। रायबहादुर व्यग्रतापूर्वक कमरे में टहलने लगे। उनकी मानसिक अवस्था इस समय सोचनीय प्रतीत हो रही थी। उन्होंने अनूप को तार दिया था कि रसना को साथ लेकर वह शीघ्र ही चला आये, परन्तु चौबीस घण्टे बीत जाने पर भी वे लोग आये न थे—यही रायबदुर की बेचैनी का कारण था।

'कितना निकम्मा है यह अनूप !" रायबदुर अपने-आप बड़बड़ाने लगे। उनका टहलना जारी रहा-"बिलकुल अपनों नई अम्माँ की राय से चलता है वह बेहूदा ! रसना उसे भी बरबाद कर देगी। वह नागिन है....उसे धन का लोभ है। वह सोचती है कि बुड्ढे को खूब उल्लू फाँसा है !...यह नहीं समझती की बुड्ढा रायबहादुर उसकी नस नस पहचान गया है

और उसकी हरकत पर निगाह रखता है...'' रायबहादुर ने रुक कर नौकर को आवाज दी। नौकर दौड़ा हुआ आया। रायबहादुर ने कहा—''देखो, गांगुली बाबू सालिसिटर आयें तो मुझे तुरन्त खबर देना।''

''वे तो बहुत देर से आये हुए हैं, हुजूर ! बैठक में आपका इन्तजार कर रहे हैं....'' नौकर ने कहा।

''तूने मुझे खबर क्यों नहीं दी ?...''

''मैंने सोचा हुजूर किसी सोच में हैं—इसीलिए....''

''अच्छा उन्हें भेज दे यहीं—'' रायबहादुर ने आज्ञा दी। नौकर चला गया। दो मिनट बाद कमरे में वकीलों जैसी पोशाक पहने हुए एक बंगाली सज्जन ने प्रवेश किया। यही गांगुली बाबू थे, रायबहादुर निहालचन्द के सालिसिटर। रायबहादुर का इन पर प्रगाढ़ विश्वास था। आते ही गांगुली बाबू ने रायबहादुर को अभिवादन किया।

''आइये सालिसिटर साहब।....'' रायबहादुर ने एक खाली कुर्सी की ओर इशारा कर दिया। गांगुली बाबू उस पर आसीन हुए। रायबहादुर भी एक आराम-कुर्सी पर बैठ गये।

''कोई आवश्यक कार्य है क्या ?—'' गांगुली बाबू ने पूछा।

''हाँ, बहुत आवश्यक !....'' रायबहादुर बोले—मेरी बीमारी की गिरती हुई अवस्था को देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि कब आँखें बन्द हो जायँ ? इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस सम्पत्ति की वसीयत कर दूँ....'' रायबहादुर को हृदय-रोग था, जिससे किसी भी समय उनकी मृत्यु हो सकती थी।

''जी हाँ ! विचार प्रशंसनीय है....''

''मेरी पत्नी रसना बनारस गई है। अनूप भी नहीं हैं। तार देकर बुलाया है उन दोनों को....'' रायबहादुर ने कहा।

आप किसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं ?''—पूछा गांगुली बाबू ने।

"उत्तराधिकारी ?..." विचित्र रूप से हँस पड़े रायबहादुर "किसे उत्तराधिकारी बनाऊँ ? यही तो विकट समस्या है ! रसना मेरी पत्नी है, मगर उस पर मेरा विश्वास नहीं ! अनूप अपनी नई अम्मा का दास है। उसमें अकल नाम की कोई वस्तु नहीं रसना ने उसे जो पाठ पढ़ा दिया, वह उसे ही ठीक समझकर गाँठ बाँध लेता है। तबीयत हैरान है क्या करूँ, क्या करूँ ?...."

"क्या अनूपकुमार यह सब सम्हाल सकने में असमर्थ हैं ?"

"पूर्णतया असमर्थ है वह ! मैंने बताया न कि वह आवश्यकता से अधिक सरल है। उसकी सरलता को आप उसका गुण कह सकते हैं—मगर यह सका विनाशकारी अवगुण है। विकल भी चला गया। वह अच्छा लड़का था !" एकाएक रायबहादुर रुक गये, क्योंकि उसी समय अनूप के ठहाके की आवाज बगल के कमरे से आई और दो ही क्षण पश्चात अनूप, रसना तथा रसना का अनोखा सहचर पंडित आ पहुँचे। पंडित के सर पर इस समय पट्टी बँधी हुई देखकर यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि इसके सर पर कोई घाव है !

"गाड़ी पूरे डेढ़ घण्टा लेट थी, पिताजी ! इसीलिए देर हो गई—" अनूप अपनी सहज मुस्कुराहट के साथ बोला—"इस पंडित ने देर कर दी, नहीं तो पहली गाड़ी न छूटती इसके सर में कल रात न जाने कैसे चोट लग गई !...."

"तुम लोग बगल वाले कमरे में जाओ...." रायबहादुर ने अन्यमनस्क भाव से आदेश दिया। अनूप, रसना और पंडित स कमरे से बाहर हो गये।

बगलवाले कमरे में जाकर रसना और पंडित बैठ गये। अनूप बगीचे में टहलने चला गया। रसना ने पूछा—"अब सर का दर्द कैसा है, पंडित ?"

"अब तो ठीक है, हुजूर !....अगर जीवित रहा तो उस

फजल के बच्चे से जरूर बदला लूँगा....'' पंडित ने कहा—
"उसके बदन में न जाने कितनी ताकत है !....वर्ना अगर कोई दूसरा
ना तो उस छूरे की चोट से ढेर हो जाता— सच कहता हूँ, हुजूर !
मुझे तो कुछ याद भी नहीं कि कैसे क्या हुआ ? इतनी जल्दी घटनायें
ट गईं कि ...''

"मैंने खूब ध्यानपूर्वक देखा था कि जब तुम अफजल पर छूरा
कर झपट पड़े तो एक बार वह घबड़ा गया था, मगर तुरन्त
ी उसने अपने मजबूत हाथों से तुम्हारी कलाई पकड़ कर उमेठ
ी ! छूरा झन्नाता हुआ तुम्हारे हाथ से सड़क पर गिर पड़ा।
बहुत छटपटाये, मगर उसकी फौलाद जैसी उंगलियों से
ी कलाई छुड़ा न सके। जब तुम ज्यादा छटपटाने लगे तो
तुम्हें जोरों से ढकेल दिया। तुम्हारा सर मोटर के गियर
टकरा गया और खून की धारा बह चली। और वह साहसी
जल पुनः रिक्शा उठाकर चलता बना। जाते-जाते सने कहा
—"हुजूर ! मैं अफजल हूँ, जिसके नाम से बनारस काँपता है।
फिर आपने मुझसे छेड़छाड़ की तो खुदा कसम ! ठीक नहीं
....''

"बनारस का वह मशहूर गिरहकट और गुण्डा है, पर रिक्शा
ल है। यह आश्चर्य की बात है, हुजूर ? सद्व्यवहार से पैसा
कमाना उसने कैसे सीखा ?''—पंडित बोला।

"चुप !'' एकाएक रसना ने होठों पर अंगुली रखकर पंडित को
चुप रहने का संकेत किया—"सुनो ! शायद रायबहादुर सॉलिसिटर
से विकल के विषय की कोई बात कर रहे हैं....''

रसना उठी और उस कोठरी के दरवाजे के पास जाकर उसने
कान लगा दिये।

"हाँ हाँ....'' रायबहादुर बोले—"मेरे घर में विकल ही एक
ऐसा लड़का था, जो विश्वासी था। मेरा दृढ़ निश्चय है कि चोरी
उसने नहीं की है। आप ऐसी कोशिश करें कि उसके नाम से जो

वारण्ट जारी हुआ है, वह उठा लिया जाय..."

"बहुत अच्छा !"—गंगोली महाशय ने आश्वासन दिया।

"वारण्ट उठते ही वह जहाँ कहीं भी होगा, मेरे पास आयेगा। वह मुझे बहुत चाहता है।"

"विकल से आपका क्या सम्बन्ध है....?" गंगोली बाबू पूछा—"वसीयतनामे में सब बातें खोलकर लिखनी पड़ेगी। विकल के विषय की सभी बातें मुझे बता दें..." सॉलिसिटर जेब से नोटबुक निकाली। रायबहादुर ने उस कोठरी में टँगे विकल के फोटो की ओर देखा, फिर बोले—"अच्छी बात है, सारी कहानी कह रहा हूँ, आप जो आवश्यक समझें नोट चलें...." रायबहादुर जरा-सा रुके, मानो वे विस्मृत अतीत पुनः स्मृति-पट पर लाने का प्रयत्न कर रहे हों—"हाँ तो से पचीस साल पहले मैं केवल एक छोटा-सा जमींदार था। दिन जब कि सारा संसार सूर्य-भगवान की ज्वाला से विदग्ध ग्रीष्म की दोपहरी में विश्राम कर रहा था, मेरे दरवाजे पर युवती शारीरिक अस्वस्थता के कारण गिरती-पड़ती आई। मेरे दरवाजे पर पहुँचते-पहुँचते चेतनाहीन हो गई। मैं दौड़ा, नौकर-चाकर भी दौड़ पड़े। युवती के पास जाकर मैंने पहचाना वह मेरी बहुत दूर के रिश्ते की बहन लगती थी। उसका था सुखदा...."

"डाक्टर लाये गये। सुखदा की सेवा-सुश्रुषा होने लगी कई घंटे बाद जब उसे चेतना आई, तो मैंने पूछा—सुखदा ! तेरी क्या दशा है ? तू इस तरह फटे-पुराने चीथड़े पहने हुए से आ पहुँची ?...मुझे आश्चर्य हो रहा था, क्योंकि मैं था कि सुखदा के घर वाले बहुत धनी एवं प्रतिष्ठित कुल के थे।

सुखदा कुछ न बोली। मैंने पुनः छा—"घर वाले सुखदा ?"—सुखदा के क्षीण मुख पर हास्य की रेखा हुई—"संसार में मेरा कोई घर वाला नहीं है, भैया ! वह

बा… को पता चला कि किसी त्रुटि के कारण सुखदा के घर वालों उसे घर से निकाल दिया है। वह त्रुटि थी सुखदा की एक …नक भूल! यौवन-निधि का क्रय-विक्रय! तभी तो समाज बहिष्कृत होने के भय से सुखदा के घर वलों ने सुखदा को, के गर्भ में एक अवैध्य शिशु का परिपालन हो रहा था, घर से निकाल दिया!

सुखदा ने रो-रोकर अपनी दुखपूर्ण हृदयद्रावक कहानी बतायी— बनारस के किसी कालेज में पढ़ती थी। उच्छृंखल यौवन.... यौवन का प्रथम चरण!....वह अपने को सँभाल न सकी। सहशिक्षा के विभीषकायम दुष्परिणाम से जिस प्रकार सैकड़ों …नियाँ दर दर की भिखारिणी बन जाती हैं, वही हाल सुखदा भी हुआ। आग और फूस, एक स्थान पर रहकर सुलग उठते। जब यौवन और वासना का परिपूर्ण युवक और युवतियाँ साथ-रहती हैं तो अपनी चिर लिप्सा को कब तक नियंत्रण रख …हैं? अपनी संचित यौवन-निधि कब तक अक्षुण्ण रख सकती? यौवन का उन्माद आँधी से भी प्रलयंकारी है। जब इस आँधी वेग बढ़ता है, दुर्दमनीय वासना प्रबल होती है, तो सद्-विचार …वं सद्-आचरण सूखे पत्ते की भाँति उड़ जाते हैं और मनुष्य …ा को भयानक अग्नि को सम्भोग-बारि द्वारा शान्त का प्रयत्न करने लगता है। उस समय किसी भी की उसे आशंका नहीं रहती। लज्जा के आवरण को -भिन्न कर वह निर्लज्जता पर उतर आता है। एक क्षणिक के वशीभूत होकर हाड़-मांस का यह पुतला, जिसे आदमी जाता है, और जो सृष्टि के सभी जीवों में सुसभ्य और …तिशील माना जाता है, भयानक दुष्कर्म पर कटिवद्ध हो है।

एक काली रात में सुखदा ने भी अपने किसी सहपाठी युवक मीठी बातों में आकर अपने को लुटा दिया। दोनों ने भयानक

तृष्ण की शान्ति के लिए एक हेय उपाय का आश्रय लिया, और पास के आकर्षण ने इन्हें और भी प्रोत्साहित किया। अवसर पाते ही दोनों एकाकार होकर भभकती वासना को शान्त करने लगे।

वासना की परितुष्टि के लिए तनिक-सा यत्न करने पर वासना और उद्दीप्त हो उठती है। हृदय जो पहले अल्प मात्र का इच्छुक रहता है, कालान्तर में विशेष मात्रा की कामना करने लगता है-यही वसना का चक्र है !

धीरे-धीरे कालेज में, तत्पश्चात शहर में इस प्रेम-चर्चा ने जोर पकड़ा। सुखदा अब तक अज्ञान थी परन्तु उसके नेत्र तब खुले, जब उसने देखा कि वह शीघ्र ही एक बच्चे की माता होने जा रही है। वह काँप उठी। भीषण दुष्परिणाम उसके सर पर सवार था, उसे दूर करने का कोई भी उपाय न था। वह जिधर देखती उधर ही उसे समाजरूपी पिशाच का डरावना स्वरूप दिखाई देता।

अनुभवहीन युवक तो वासना के दास होते हैं। वे केवल इन्द्रियों की परितुष्टि ही चाहते हैं। समाज में उच्छृंखल युवकों के लिये तनिक भी बन्धन नहीं, परन्तु स्त्रियों के लिए तो यह समाज इतना संगदिल हो जाता है जिसकी गणना नहीं। यही कारण है कि वह पाप, जिसके करने में युवकों की इच्छा बलवती रहती है जिसके करने में युवकों का ही हाथ विशेषरूप से रहता है-वही पाप केवल स्त्रियों के लिए ही विभीषिका हो जाता है। केवल स्त्रियों को ही उस भीषण दुष्कृत्य का परिणाम भोगना पड़ता है।

इसी कारण सुखदा निकाल दी गई थी। बहुत पूछने पर भी उसने उस युवक का नाम नहीं बताया, जिसने उसको यौवन निधि के साथ वीभत्स परिहास कियाथा, जिसने अपनी क्रूर लिप्सा की पूर्ति के लिए एक भोली बालिका का सुख-चैन अपहृत किया था।

जिसने अपनी वासना की पूर्ति कर, उस अभागी सुखदा की ओर से आँखें फेर ली थी।

सुखदा गर्भवती थी। दो महीने पश्चात् उसे एक चाँद-सा सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ। अगणित कष्ट एवं असहनीय वैकल्य में ही वह शिशु उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसका नाम रखा गया-विकल।

विकल पूर्णचन्द्र-सा प्रकाशमान होता गया, सुखदा की अवस्था सोचनीय होती गयी। वह विकल का प्रफुल्ल मुख देखती तो उसे स भयानक रात्रि की याद आ जाती, जब उसने अपना सब कुछ उस कामी युवक को अर्पण कर दिया था। उस पाप की याद भीषण दावा-नल बनकर उसके रक्त-मांस का शोषण करने लगी। उसके शरीर का मांस, हड्डियों के साथ सिकुड़ गया—खून पानी बनकर उड़ गया—वह अस्थिपञ्जर मात्र रह गई। मेरे यहाँ सब सुख था, परन्तु उसके मानसिक दुःख को कोई दवा मेरे पास न थी।

एक दिन अर्द्धरात्रि के समय उस अभागिनी ने सदैव के लिए आँखें मूँद लीं। मरते समय उसने अपने दुखद जीवन की और बहुत सी बातें बतायीं और एक बड़ा-सा लिफाफा मुझे देकर बोली—"भैया! यह लिफाफा ही मेरे जीवन की अमूल्य निधि है। जब विकल बड़ा हो जाय तो उसे यह ज्यों-का त्यों सौंप दीजियेगा।"

वह मर गई, मेरा दिल भी मर गया—यह सोचकर कि काश! समाज के विनाशकारी बन्धन नष्ट-भ्रष्ट हो सकते! जिस समाज में पुरुष और स्त्रियों के संयुक्त पापों के लिए केवल स्त्रियाँ ही जिम्मेदार घोषित की जाती हैं—जिस समाज ने पुरुषों को अनेक स्त्रियाँ, परन्तु स्त्रियों को केवल एक पुरुष की आज्ञा दी है, ऐसे समाज, ऐसे हेय एवं घृणित संगदिल समाज पर तुफ है—लानत है!....

वह लिफाफा, जिसे सुखदा ने मरते समय विकल के लिए दिया था, न जाने कहाँ गुम हो गया! उस समय मेरा हृदय

शोकार्त था, इसीलिए मैंने उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। सोचा उसमें विकल के लिए दो सौ रुपये के नोट होंगे और क्या होगा— परन्तु विकल को अब रुपयों की जरूरत क्या थी ? वह तो मेरा ... कर रहेगा ?

जिस समय सुखदा मरी थी, स समय विकल की आयु चार वर्ष की थी ! मेरी पहली स्त्री मर चुकी थी और उसका लड़का अनूप केवल दो वर्ष का था। इन दोनों लड़कों का मैं लालन-पालन करने लगा। विकल की बुद्धि तीव्र थी, उसने शीघ्र ही बी० ए० पास कर लिया परन्तु अनूप अल्पबुद्धि के कारण अब तक पास न हो सका।

जब बीस वर्ष की अवस्था में विकल ने बी० ए० पास कर लिया तो लगनपूर्वक जमींदारी का कार्य देखने लगा। मैं जमींदारी से अपना हाथ खींचकर आराम के साथ जीवन यापन करने लगा।

मनुष्य से जो-जो भूलें हो सकती हैं, उन सबसे भयंकर भूल मुझसे हुई ! आज से चार साल पहले मैंने एक युवती के साथ शादी कर ली। यही वह भूल है, जिसके कारण विकल ने मुझे त्याग दिया और मैं तबाह हो गया....'' और रायबहादुर के मुख से वेदनापूर्ण आह निकल पड़ी।

*   *   *

''हाँ हाँ कहे चलो, रुके क्यों—'' अफजल ने कहा—''तुम्हारी कहानी दिलचस्प और इतनी अच्छी है कि खुदा कसम....''

''तुम्हें भी अच्छी लग रही है भाभी, मेरी यह कहानी !''— विकल ने गुलाब से पूछा।

''तुमसे मतलब ?—अच्छी लगे या न लगे, तुम कहे चलो....'' आँखों पर तीर चढ़ाकर गुलाब ने अपनत्व से ओत-प्रोत स्नेहिल उत्तर दिया। उस समय विकल के कमरे में ही अफजल और गुलाब बैठे थे। विकल अपनी कहानी कह रहा था—

''बाबूजी अक्सर बाहरी बैठक में बैठे रहा करते थे और मैं जमींदारी का काम देखने में व्यस्त रहता था। नई अम्माँ की

र विशेष कृपा रहती। अनूप बनारस में पढ़ रहा था। इस चैन से दिन व्यतीत हो रहे थे, परन्तु बाबूजी की इस नई से केवल इनके कुछ खुशामदी मुसाहबों को छोड़कर, अन्य लोग नाखुश थे। अधिकतर मुझे नई अम्मा से राय लेनी पड़ती। नई अम्माँ कुछ कड़े मिजाज की थीं। कभी-कभी उनकी आज्ञा प्रजा पर जुल्म भी किये जाते थे। अतः प्रजा की सद्भावना नई पर से उठ गई थी।

धीरे-धीरे नई अम्माँ में मैं एक विशेष परिवर्तन देखने लगा। जब मुझे देखतीं तो मुस्करा पड़तीं, परन्तु मैं मुंह फेर लेता। नई अम्माँ के मुंह पर मै सहज वात्सल्य एवं स्नेहिल भाव की भावना रखता था, उसी के मुख पर निर्लज्जतापूर्ण -भाव तथा कामुक संकेत देखकर, मैं जैसे जमीन में गड़ था।

अब मैं नई अम्माँ से दूर भागने की चेष्टा करने लगा, परन्तु अम्मा मुझे हठपूर्वक घर में रोक रखने का प्रयत्न करने लगीं। कभी वे कहतीं—क्यों इतना परेशान होते हो, सारा काम पर छोड़ दो .... पर मैं नहीं मानता था। एक दिन हमारे अनुभवी कारिन्दे ने कहा—"विकल बाबू! तुम अपनी अम्माँ सावधान रहना...."

उस दिन से मैं भीतर बहुत कम जाने लगा, मगर भोजन करने सोने के लिए तो जाना ही पड़ता था। एक दिन जब कि मैं का ब्यालू करके पलंग पर लेटा ही था, किसी ने मेरा दरवाजा खटाया। मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया। सामने वस्त्राभू- से सुसज्जित नई अम्मा को देख, मैं आश्चर्य से भर उठा।

वे सतर्कतापूर्वक भीतर घुस आईं और अन्दर से किवाड़ बन्द लिया। भावी आशंका से मैं भयभीत हो उठा। मैं चुपचाप उनकी हरकत देखता रहा। नई अम्माँ की वासना चरमसीमा पहुँच गई थी। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर पलंग पर बैठाया आप भी मुझसे सटकर बैठ गईं।

उस समय मैं आत्म-विस्मृत-सा हो उठा था। मुझे कुछ होश नहीं था कि नई अम्माँ मेरे साथ कोई अनुचित व्यवहार करने रही हैं। इसके बाद न जाने क्या-क्या हुआ। मुझे चेतना तब जब कि अम्माँ की वासना लगभग पूर्ण होने के करीब थी। एका मुझमें देवी ज्ञान का उदय हुआ। मैं झटके के साथ उठ हुआ : नई अम्माँ मुझसे आबद्ध हो गईं और आतुर स्वर में "विकल ! प्यारे विकल !"

वासना की वह प्रतिमा मेरे बदन से साँप-सी लिपट गई मैं काँप उठा। झटके के साथ मैंने उन्हें दरवाजे के बाहर दिया और भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया।

स्त्रियों को अतृप्त वासना ही भयंकर क्रोध की जननी है। अम्माँ ने मेरे विनाश का मार्ग तैयार किया। दूसरे दिन प्रातः यह शोर हुआ कि नई अम्माँ के पचास हजार के गहने चोरी गये हैं। पुलिस ऑफिसर आया और तलाशी लेने पर मेरी में एक इयरिंग निकला। यह नई अम्माँ की साजिश थी, अतः बहनों की चोरी भी मुझपर लगाई गई। बाबूजी ने अपनी पर मुझे छुड़ाया, मुकदमा चला, मगर रंग-ढंग बहुत खराब मेरे विरुद्ध काफी प्रमाण थे। मुझे निश्चय हो गया कि दस से कम की सजा न होगी। अतः एक दिन रात्रि के समय, मामूली-सी पोशाक में घर से भाग खड़ा हुआ। यहाँ आया तो' विकल एक दीर्घ श्वांस लेकर चुप हो रहा।

"खुदा कसम ! तुमने बहुत दुःख झेला है, विकल ! अफजल बोला—"जरा ठहरो मैं अभी आया...." कहकर अपनी कोठरी में चला गया।

"भाभी ! तुम उदास क्यों हो ?" विकल ने जिज्ञासापूर्ण से गुलाब की ओर देखा।

"चलो, तुमसे मतलब ?...तुम्हें तो अपनी नई अम्माँ से ब्बत है !" गुलाब रूठ जाने का नाट्य करती हुई बोली।

"तुमसे भी मुहब्बत है, भाभी...." विकल ने कहा।

"तूह !...."

"सच भाभी ! क्या मनुष्य दो माताओं से मुहब्बत नहीं कर सकता ?...."

"तुम बड़े वैसे हो विकल ?—" हँस पड़ी गुलाब ।

"और तुम बहुत वैसी हो, भाभी !..." बनावटी संजीदगी के साथ विकल ने कहा—"आज मुझे रिक्शा लेकर जाने क्यों नहीं दिया...."

"अरी अम्माँ ! सारा कसूर मेरा ही तो है....गये क्यूँ नहीं ?" गुलाब ने सुन कर कहा—"ओह ! तुम्हें चैन कैसे मिलेगा ?—वह लड़की जो इन्तजार करती होगी ?"

० ● ०

"इन्तजार करने की जरूरत नहीं । शायद मैं आ न सकूँ...."

राय बहादुर निहालचन्द बोले—"आप जरूरी इन्तजाम खुद ही कर लें...."

"बहुत अच्छा !...." सॉलिसीटर बोले—"कल तक वसीयत-नामा की रजिस्ट्री हो जायगी विकल के ऊपर से वारण्ट रद्द करवाने की कार्यवाही भी जल्द कर लूँगा ।"

"बहुत जल्द यह सब कार्य पूर्ण हो जाय....और कुछ पूछना तो नहीं है—" रायबहादुर ने प्रश्नसूचक दृष्टि से गांगुली बाबू की ओर देखा ।

"जी नहीं !" कहकर गांगुली बाबू उठ खड़े हुए ।

सॉलिसीटर के चले जाने के बाद रायबहादुर ने रसना और अनूप को बुलाया । दोनों आये । अनूप तो एक कुर्सी पर निश्चिन्ततापूर्वक बैठ गया, परन्तु रसना सहमी हुई खड़ी रही, जाने क्यों आज रायबहादुर की मुखाकृति देखकर उसे भय लग रहा था ।

"तुम लोगों के आने में बहुत देर हो गई—" मैंने तो समझा , शायद तुम लोग आज न आ सको..." रायबहादुर बोले—'अनूप, तुम्हारी पढ़ाई का क्या हाल है ?"

"सन्तोषजनक नहीं है, पिताजी ?" उस बेवकूफ लड़के
स्पष्ट कहना सीखा था—"इकनामिक्स तो मुझसे कोसों दूर
भागती है और 'लॉजिक' मेरी समझ में नहीं आती। वैसे कोशि
कर रहा हूँ।"

"तुम्हारी नई अम्माँ तुमसे कहाँ मिली ?" रायबहादुर
उसके मूर्खतापूर्ण उत्तर पर बात बदल दी।

"नई अम्मा ?....वे तो हनीमून होटल में....नहीं-नहीं,
कहते-कहते अनूप रुक गया, क्योंकि रसना उसकी ओर तीव्र
से देखने लगी थी—"श्रीकृष्ण धर्मशाले में ठहरी थीं....
मुझसे भेंट हो गई।" अनूप ने अपनी ओर से सत्य पर अ
का आवरण डाल दिया।

"आप का तार पहुँचने से शीघ्र ही लौट आना पड़ा, नहीं
विकल को खोजने का प्रयत्न करती...." रायबहादुर का
रसना ने दूसरी ओर मोड़ दिया।

"विकल का वापस आना बहुत जरूरी है—" रायबहा
बोले - "जमींदारी का सारा काम नष्ट हो रहा है...."

"जी हाँ ?...." रसना ने कहा—"मैं चाहती हूँ कि
फिर बनारस जाऊँ और वहाँ कुछ दिनों तक रहकर उसकी
करूँ...." रसना ने यह नहीं बताया कि वह तो विकल से बन
में मिल भी चुकी है। अनूप कुछ न बोला, चुप ही रहा।

"जैसी तुम्हारी इच्छा...." रायबहादुर बोले—"मगर अ
तुम यहाँ से जाकर सीधे अपने होस्टल में चले जाना। अपनी
अम्माँ के साथ कहीं तुम भी विकल की खोज न करने लगना
रायबहादुर के कथन में जो व्यंग था, उससे रसना काँप उठी
"कल तक तुम लोग रहो, परसों जाने की तैयारी कर लेना-

●

६

लेखकों की दुनिया अलग ही होती है ! वहाँ वास्तविक संसार चहल-पहल तथा आकर्षक सुविधायें नहीं होती है । उसमें निरन्तर न के साथ-साथ शान्त वातावरण एवं एकाग्रता का साम्राज्य है । लेखक की वास्तविकता, दिवस के श्वेत प्रकाश एवं रात्रि प्रगाढ़ कालिमा में भी, अविचल गति से चिन्तन करने एवं में हैं । हा-हा—ही-ही वाला जनरवपूर्ण वातावरण लेखक विचार-श्रृंखला में तीव्र बाधक होता है। लेखक सदैव शान्त एकान्तप्रिय होता है । शहर की किसी विशाल अट्टालिका के निर्जन गाँव की किसी जीर्ण झोपड़ी में उसकी विचारधारा टत होती है, किसी होटल के बाथरूम के बजाय किसी नदी-नाले के सन्निकट वह अधिक प्रेरणा पाता है । के कर्णकटु कोलाहल से दूर रहकर वह मूक पक्षियों का सुनना चाहता है। लेखक का अनोखा व्यक्तित्व ही सम्पत्ति है ।

'व्यथित' एक ऐसा ही प्राणी था जिसे मनुष्यों का सम्पर्क न था । वह लेखक था । उसकी लेखनी से आग की चिनगा- निकलती थीं । वह साहित्यिक था, परन्तु मानवीय नेत्रों से । अन्य लेखकों की भाँति वह सभा-सोसाइटी में नहीं दीख था । किसी ने उसे देखा भी न था । वह दुनियाँ के न जाने परदे में बैठा, कागज और कलम से अपनी बौद्धिक भूख करता था । उसकी लेखनी लोगों को ता-थई-नचा देती । कभी किसी ने उस अकेले मनुष्य का – उस अकेले व्यक्ति

का, पता लगाने की कोशिश न की थी। न जाने कितने ऐसे व्यथित दुनियां के पर्दे में पड़े दुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं कौन उनकी खबर लेता है? लोगों को उनकी कहानियों रस स्वादन लेना था, न कि स्वरूप का दर्शन !

अब तक कान्ता को पुरुषों के विषय में चिन्तन करने का अवकाश न मिला था। सोलह वर्ष की इस अवस्था तक उसे यह ज्ञा भी न था कि स्त्री के जीवन में पुरुष का सम्पर्क आवश्यक अविनार्य है। परन्तु अब उसके जीवन-पथ में तीन पुरुष आ थे। वह बहुधा इनके विषय में सोचा करती थी। पहला पुरुष 'व्यथित'! जिसकी केवल रचनायें पढ़कर ही वह चलाय-मान उठी थी। दूसरा था विकल ! जिसकी दयनीय अवस्था पर उसकी हार्दिक सहानुभूति थी। तीसरा था अनूप ! जिसकी अल्हड़ता एवं सरलता ने उसे मुग्ध कर लिया था। वह अक्सर यही सब सोचते सोचते विचारों के अथाह सागर में डूबने-उतराने लगती थी। वह सोचती—'व्यथित' जिसकी कलम में इतनी ताकत है, जिसकी लेखनी में इतना चमत्कार है, जिसके भावों में इतना उद्वेलित मंथन है....तो उसकी वाणी में कितनी शक्ति होगी? उसकी मुखाकृति कितनी आकर्षक होगी !....और विकल ! जिसकी दयनीय भंगिमा देखकर हृदय क्रन्दन करने लगता है, जिसके नेत्र पलकों में अगणित अश्रुकण छिपाये रहते हैं, जो दिन-रात रिक्शा खींचते-खींचते मर जाता है—वह कैसे अपने दिन व्यतीत होगा....अनूप। जिसकी असावधान भंगिमा तीव्र गति से हृदय को आकर्षित कर लेती है. जिसकी बातें सहज सरलता से ओत तथा निष्कर्ष विहीन होती हैं, उस अनुभवहीन युवक के लिए क्या एक जीवन-साथी की अत्यन्त आवश्यकता नहीं? क्या बिना साथी के वह बेचारा अपनी असावधानी दूर कर सकेगा?

उस दिन कान्ता अपने ड्राईङ्गरूम में बड़ी देर तक इन्हीं सब विचारों में तल्लीन रही। विचारधारा रुकते ही उसने 'उजाला'

पत्र का नवीन अंक उठा लिया 'व्यथित' की 'अधूरी-कहानी' कहानी पढ़ने लगी।

दस मिनट बाद ही सेठ राकेशरमण आ पहुँचे। बोले—"अरे तू बैठी हुई पढ़ रही है?...कालेज से आई और फिर पढ़ने में ! यह नहीं कि नाश्ता कर ले..."

'यह देखिये पिताजी !—" कान्ता ने सेठजी को 'उजाला' की दिखलाते हुए कहा—"इसमें 'व्यथित' की एक मार्मिक कहानी है-इतनी अच्छी ! उफ् इतनी अच्छी है कि—"

"तू 'व्यथित' की बड़ी प्रशंसा किया करती है...." सेठजी ..."जा नाश्ता कर ले। रिक्शावाला आ गया है—"

"रिक्शावाला आ गया?....परन्तु उसे तो मैंने सात बजे था...." कहती हुई कान्ता की दृष्टि घड़ी की ओर गई— ! सात तो बज चुके ! मुझे आज 'उजाला' सम्पादक के जाना है। उनसे 'व्यथित' के विषय में कुछ जानने की चेष्टा । ऐसे लेखक से परिचय प्राप्त करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता !"

कान्ता ने उतावली के साथ कुछ नाश्ता किया। साड़ी बदली भंगिमा ठीक कर बाहर आई। उसका चिर-परिचित रिक्शावाला ल खड़ा था—"तुम बड़ी जल्दी आ गये, विकल?...." कान्ता कहा।

"जी हाँ...." विकल ने लज्जित भाव से केवल इतना ही कहा नीची दृष्टि किये सड़क की छाती पर देखता रहा। कान्ता के उसे लज्जा का बोध होता था। पुरुष का स्थान स्त्रियों से है, परन्तु विकल की दृष्टि में तो स्त्री ही श्रेष्ठ थी और ?....

"नीचीबाग ले चलो...." कहती हुई कान्ता। रिक्शे पर जा और विकल रिक्शा उठाकर दौड़ चला।

"तुम अकेले हो?" कान्ता मार्मिक प्रश्न पूछ बैठी।

"जी हाँ ! अकेला हूँ, एकदम अकेला !"

"क्यों ?...." कान्ता का यह प्रश्न गूढ़ था।

"दुनियाँ में असहायों और गरीबों का साथी कोई नहीं होता.. उसका साथ देने के लिये मात्र 'गरीबी' है, और उसे ही आप समझ लें—" विकल ने अनमने भाव से कह दिया।

"हृदय को व्यथित करने वाली इतनी मार्मिक बातें तुम करते हो, विकल ? किसी का हृदय व्यथित करने से क्या मिलता है तुम्हें—" कान्ता का स्वर परिवर्तित हो गया था। उसके मुख एक करुण आह निकल कर शून्य में विलीन हो गई।

विकल आश्चर्य से चौंक पड़ा....उफ्! इस युवती को तुच्छ व्यक्ति की कथा सुनकर दुःख होता है ? तो फिर क्यों स्वयं उसकी कहानी पूछती है ? इसमें केवल सहानुभूति है आन्तरिक प्रेम ?

"आपको केवल सुनकर ही दुःख होता है—परन्तु हमें तो में ही जीवनयापन करना पड़ता है—" विकल की यह बात और करुणोत्पादक थी।

कान्ता एक बार विकल के कृश शरीर पर दृष्टि डालकर चुप रही। विकल ने एक ऐसी वास्तविक बात कह दी थी—जिसका उत्तर न था।

रिक्शा नीचीबाग पहुँच गया। कान्ता ने एक आलीशान की ओर संकेत करके कहा—"वहाँ ले चलो।"

बिल्डिंग के सामने रिक्शा खड़ा हुआ। कान्ता उतर पड़ी उस बिल्डिंग की दीवार पर एक बड़ा-सा साइनबोर्ड लगा था, पीतल के बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"उजाला कार्यालय !" खड़े होते ही न जाने क्यों विकल चौंक पड़ा ? कान्ता अन्दर जाते बोली—"तुम यहीं खड़े रहना मैं अभी आयी...."

लगभग पन्द्रह मिनट तक विकल वहीं खड़ा रहा। कुछ ही पश्चात् उसकी दृष्टि सामने से आती हुई एक युवती पर जा . जो कि चारों ओर सतर्कतापूर्वक देखती हुई चली आ रही थी।

युवती को देखकर विकल कांप उठा। वह रसना थी। आज पैदल ही बनारस घूम रही थी।

विकल रिक्शा उठाकर भाग चला। रसना से वह बहुत डरता था। वह नहीं चाहता था कि रसना का उससे साक्षात्कार हो।

रसना ने उसे देखा भी न था। वह तो अपनी ही धुन में मस्त झूमती चली आ रही थी।

"आदाबअर्ज है, हुजूर !" बगल से किसी का कर्कश स्वर सुनकर रसना चौंक पड़ी। उसने गर्दन घुमाकर देखा। अफजल को देखते ही वह काँप उठी।

"तुम ! तुम...!" रसना वास्तव में उस दुर्दान्त मुसलमान से बहुत डरती थी।

"जी हाँ हुजूर ! मैं ही हूँ .... अफजल ! आज पैदल ही घूम रही हैं हुजूर ! .... खुदाकसम ! मौसम ही ऐसा है ..." अफजल बोला।

"तुम क्या चाहते हो ?...." रसना ने कांपते स्वर से पूछा। वह बीच बाजार में उस गुण्डे से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि लोग इस मुसलमान गुण्डे से बातें करते हुए उसे देखें।

"आप भी खूब हैं, !....क्या आप समझती हैं कि मैं जो....यानी जो आपकी इतनी इज्जत करता हूँ, वह आपसे कुछ चाहने के लिये ?...." और अफजल इतने जोरों से हँस पड़ा कि जाते हुए लोग ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगे।

"अब तुम चले जाओ ! नहीं तो मुझे पुलिस को आवाज देनी पड़ेगी। मुझसे फजूल की बातें मत करो, जाओ...." रसना सक्रोध बोली।

"आप खुद किस पुलिस से कम हैं, हुजूर ? अभी उस दिन... खैर जाने दीजिये—वह आपके जाकेट की जेब में मनीबेग दिखाई पड़ रहा है न ?...."

"हाँ तुम अपना मतलब बताओ ?"

"क्या बताऊँ हुजूर ? अपनी गुलाब के लिये कानफूल खरीदना चाहता था—बीस रुपये की सख्त जरूरत है..."

"मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं...." रसना ने रुक्ष स्वर में कहा।

"वाह हुजूर !" अफजल हँसा—"आपके मनीबेग में अभी ढाई सौ के नोट हैं !....उस दूकानदार के यहाँ, जहाँ आप साड़ी खरीद रही थीं, मैंने सब देख लिया था। आपने साड़ी का दाम देने के लिये निकाला था। मैं बहुत दूर से आपके पीछे हूँ—चाहता तो उस दूकान पर से मनीबेग ही गायब कर देता...."

रसना ने एक बार आकुल दृष्टि से अफजल की क्रूर मुद्रा की ओर देखा। देखते ही मनीबेग से दस-दस के दो नोट निकालकर उसकी मुट्ठी में ठूँस दिये और अफजल के "आदाब अर्ज" का कुछ जवाब न देकर तेजी के साथ चल पड़ी।

● ●

"कहिये, कैसे कष्ट किया ?—" उजाला के सम्पादक ने पूछा।

"यों ही !....दर्शनार्थ चली आयी हूँ..." कान्ता ने उत्तर दिया। फिर यह सोचकर कि सम्पादकों का समय बहुत मूल्यवान होता है, उसने 'उजाला' का पृष्ठ खोलकर दिखाते हुए पूछा—"यह व्यथित कौन है ?"

"ओह ! आप श्रीयुत व्यथित बी० ए० की बात पूछ रही है-" सम्पादक जी हँसे—"वे एक उत्कृष्ट कहानी लेखक हैं...."

"मेरे पूछने का तात्पर्य यह नहीं है। मैं उनका विशेष परिचय जानना चाहती हूँ...."

"विशेष परिचय ?..." एका-एक सम्पादकजी गम्भीर हो गये—"यह एक कठिन समस्या है जो आज पहले पहल मेरे सामने आई है। अब तक किसी ने भी 'व्यथित' का विशेष परिचय जानने की कोशिश नहीं की थी। मुझे आश्चर्य है कि स्वयं मैं भी इस ओर से उदासीन रहा....मगर वास्तविक बात तो यह है कि उनकी समस्त रचनाएं पोस्ट से हमारे पास आती हैं...."

पोस्ट से ?....''
"जी हाँ ! कुछ महीने पहले मिर्जापुर से उसकी रचनाएं आती थीं—परन्तु अबतो इसी शहर से आती है !" सम्पादक जी बोले।

"इसी शहर से....क्या आप उनका पता मुझे दे सकते हैं ?"

"क्यों नहीं ?" सम्पादक जी उठे और आलमारी से एक मोटी फाइल उठा लाये—"यह लीजिऐ..." कहते हुए उन्होंने कान्ता को एक छोटा-सा कागज पकड़ा दिया—"व्यथीत जी से मुलाकात करके मेरी ओर से यह निवेदन कर देने की कृपा कीजियेगा कि यदि कष्ट न हो तो एक बार मुझे दर्शन देने की कृपा करेंगे..." सम्पादकजी ने कहा।

"बहुत अच्छा ! ...." कहकर कान्ता बाहर आई, मगर विकल कहीं दिखाई न पड़ा। कान्ता को बड़ा आश्चर्य हुआ, विकल के इस प्रकार एका-एक चले जाने पर। परन्तु उसे तो आज 'व्यथित' से अवश्य भेंट करनी थी।

उसने एक दूसरा रिक्शा बुलाया और गन्तव्य स्थान का नाम बताकर रिक्शे पर बैठ गई। रिक्शावाला दौड़ चला। उससे भी अधिक तेजी से दौड़ चला कान्ता का मन-मस्तिक ! उस कागज में 'व्यथित' के रहने का जो मुहल्ला लिखा था, वह ऐसा मुहल्ला था जहाँ कुली एवं दरिद्र लोग ही रहते थे। उस मुहल्ले म एक साहित्यिक का रहना आश्चर्यजनक बात थी।

रिक्शा उस मुहल्ले में पहुँच गया। उस कागज में मकान का जो लिखा था, उस के आधार पर कान्ता एक टूटे-फूटे मकान के पहुँची, परन्तु मकान का दरवाजा बन्द था ! बगल के मकान सोलह-सत्रह साल की एक लड़की आकर कान्ता के सामने खड़ी गयी। कान्ता समझ गई कि यह किसी मुसलमान की लड़की है, उसके घर वाले गरीब नहीं मालूम पड़ते क्योंकि उसके बदन काफी अच्छे कपड़े मौजूद थे !

"यहाँ 'व्यथितजी' रहते हैं ?" — कान्ता ने पूछा।

"...." लड़की चुप रही। उसने कान्ता का प्रश्न समझा ही नहीं।

"यहाँ कोई 'व्यथित' नाम के आदमी रहते हैं ?..." कान्ता ने अपना प्रश्न दुहराया।

अब लड़की ने उसका मतलब समझा। उसने उत्तर दिया—"यहाँ बेथित-फेथित नहीं रहता कोई....इस मुहल्ले भर में इस नाम का कोई आदमी नहीं...."

"क्या है गुलाब ? है क्या ?"-तभी अफजल वहाँ आ पहुँचा "आप हैं हुजूर !...." कान्ता को देखकर अफजल चौंक पड़ा—

"अरी गुलाब ! हुजूर के लिए चारपाई लाकर डाल दे। खुदा-कसम ! तुझे जरा सा भी सलीका नहीं मालूम...." उसने गुलाब को मधुर झिड़की दी।

"अरी अम्माँ ! मैं क्या जानूं कि ये तुम्हारी जान-पहचान की हैं...."

'देखो !....यह देखो इस बेवकूफ छोकरी का...." अफजल गुलाब पर बिगड़ पड़ा—"खुदा कसम ! मेरा गुस्सा बहुत खतरनाक है—तमीज से बातें करना सीख ?"

"जाने दो अफजल !...." कान्ता ने कहा—"यही है गुलाब बहन ?"

"जी हाँ .." अफजल अपने इस एकाएक बिगड़ पड़ने शर्मिन्दा हुआ—"किसलिए तशरीफ लाई हैं हुजूर ?"

"एक आदमी को खोज रही थी—'व्यथित' नाम का कोई व्यक्ति रहता है इस मुहल्ले में ?"

"नही हुजूर ? इस मुहल्ले भर में इस नाम का कोई आदमी नहीं है—टर्रे खाँ, घिनहू, इस्माइल, इसहाक, लकटू—सभी तो हैं, मगर वह नहीं है, जिसे आप चाहती हैं...."

लाचार कान्ता को वापस लौटना पड़ा। कान्ता के चले जाने पर अफजल घर के भीतर आया। उसने देखा—गुलाब-सी खूब-

सूरत गुलाब चारपाई पर बैठी हुई सिसकियाँ ले रही है। उसे महान आश्चर्य हुआ यह देखकर कि जरा-सी बात पर इतना गुस्सा क्यों आ गया उसकी महबूबा को !

इसके पहले कई बार अफजल ने गुलाब को भला-बुरा कहा था, मगर तब तो गुलाब इस प्रकार व्यथित नहीं हुई थी....आज जरा सा झिड़कने पर रो पड़ी ? कारण स्पष्ट था। एक स्त्री के समक्ष बुरा-भला कहना, पहली को दूसरी से हेय बनाना था। अफजल ने भी यही गलती की थी। उसे चाहिये था कि कान्ता के समक्ष वह गुलाब को न झिड़कता।

अफजल ने आगे बढ़कर गुलाब को अपनी गोद में उठा लिया का सहारा पाकर गुलाब जोरों से सिसकियाँ लेने लगी—

"तुम रूठ गई ?" अफजल नम्र स्वर में बोला—"खुदा कसम ! तुम जितनी खूबसूरत हो उतनी ही भोली हो ! काश ! जामे-शराब के साथ तुम्हारी यह खूबसूरती भी घोलकर पी सकता .... ! बड़ा नशा आता !"

अफजल की हास्यमिश्रित बात सुनकर गुलाब एका-एक हँस पड़ी— "पीओगे ?' उसने पूछा।

"पीयूँगा —जरूर पीयूँगा—हुस्ने—शराब को कौन बेवकूफ पीना नहीं चाहेगा !...." कहते हुए अफजल ने गुलाब के आरक्त होठों का मदिरा-पान कर ली।

"चलो ! .... न कुछ देना न लेना—दिन भर ...." तुनक कर गुलाब दूर जा बैठी।

"यह लो...!" अफजल जेब से दस-दस के दो नोट निकाल कर गुलाब के हाथों पर रख दिये—"आज विकल की नई अम्माँ मिल गई थी, उन्हीं से ऐंठ लाया हूँ,....अब तो खुश हो ?...."

"हूँ ?...." गुलाब ने शोखीं से सर हिला दिया। दूसरे ही क्षण वह फूल-सा कलिका पुनः अफजल की गोद में आ रही। दोनों के होंठ आपस में मिले और शान्त वातावरण के लिये एक अद्भुत ध्वनि छोड़कर पुनः अलग हो गये।

एका-एक गुलाब का हृदय तीव्र घृणा से आक्रान्त हो उठा, कि उसने अफजल के भयानक मुख की ओर देखा। उसकी चंचल क्षणमात्र में विलीन हो गई। उसने एक दीर्घ निश्वास लेकर अफज की गोद से अलग हो जाने का प्रयत्न किया। उफ्! एक युव जिसने अभी-अभी युवावस्था के स्वर्ण-दिवस देखे हों, एक दैत्य क किस प्रकार प्यार कर सकती है?

गुलाब युवती थी। उसके पास छलकता हुआ यौवन त इठलाता हुआ दिल था। उसकी आँखों की मदिरा, उसकी कटाक्ष द्वारा बाहर निकलकर देखने वाले को मदहोश बना देती थी साँप की तरह लहरें खाती हुई उसकी कमर ऐसी थी, मान उन्नत ऊरोजों का भार सहन कर सकने में सर्वथा असमर्थ हों। व सौंदर्यमयी थी। वह अफजल जैसे खूँखार जानवर से एकद विपरीत थी।

गुलाब का चेहरा उतर गया था! उसने अफजल के मुख क ओर फिर देखा। उफ्! कितना भयानक, जैसे दानव! कितन काला, जैसे काली रात! वह तड़प उठी। उसे अपने खुदा पर बेह गुस्सा आया, जिसने उसकी भोली जवानी के साथ खिलवाड़ कर के लिये एक भयानक नर-पशु से रिश्ता जोड़ दिया था। उसका हृद विकल जैसे पुरुष के लिये हाहाकार करने लगा। उसके ने ों के समक्ष उसकी सुन्दर एवं आकर्षक मूर्ति नृत्य कर उठी। उसे लगा, मान वह दुबला पतला युवक उसके समाने खड़ा होकर, उसे पुकार रह हो स्नेहसिक्त स्वर में—"भाभी!"

"विकल!...." भावावेश में अनायास ही वह चिल्ला पड़ी। अफजल चौंक पड़ा—"कहाँ है विकल?...." उसने पूछा और तुरन्त ही उसकी दृष्टि सड़क पर जा पड़ी। देखा सचमुच ही विकल रिक्शा लिये भागा आ रहा था। परन्तु उसके पीछे वह कौन?....पुलिसमैन!

विकल सड़क पर रिक्शा पटक कर कोठरी में घुस आया—

"अफजल भाई, मुझे बचाओ—वह पुलिसमेन साइकिल से मेरा पीछा करता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा है। नई अम्मा ने पीछे लगा दिया है।"

"तुम घबड़ाओ नहीं ?" अफजल शान्त स्वर में बोला और अपने कुरते की आस्तीन ऊपर चढ़ाकर, पुलिसमेन के निकट आने की प्रतीक्षा करने लगा।



७

"देखो पण्डित····!" रसना बोली—"अब तो रायबहादुर को देखकर मुझे डर-सा लगता है। कल जब हम, तुम और अनूप बनारस से यहाँ वापस आये थे तो मैंने यहाँ का रंग-ढंग ही एकदम बदला हुआ पाया····" यह बातचीत मिर्जापुर के रायबहादुर वाले बंगले में हो रही थी। रसना के सामने ही उसका विश्वासी चाकर 'पण्डित' खड़ा था। रसना को बनारस से मिर्जापुर आये आज दो दिन व्यतीत हो चुके थे। परन्तु अभी तक न तो अनूप ही बनारस जा सका है और न तो रसना एवं पण्डित ही। अनूप जमींदारी घूमने गया हुआ था। रायबहादुर उद्यान में थे।

"देखिए हुजूर !" पण्डित कहने लगा—"मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि बड़े सरकार हमलोगों का सारा भेद जान गये हैं। उनकी भंगिमा हमलोगों को देखकर उस दिन कितनी उद्दीप्त हो उठी थी, जब हम बनारस से आये थे····वे, सॉलिसिटर गांगुली बाबू से जो बातें कर रहे थे, आपने छिपकर सुना ही था। अब तो इस बात की पुष्टि में तनिक भी सन्देह नहीं रह गया है कि बड़े सरकार सब कुछ जान चुके हैं····"

"तब !" रसना के स्वर से निराशा टपक रही थी।

"यही कि अब शिथिल होने से काम नहीं चलेगा। सरकार को जरूर...." कहते-कहते पण्डित रुक गया। उसी समय उसे दरवाजे के बाहर कुछ आहट मिली, उसे हुआ कि कोई बाहर से उनकी गुप्त बातचीत सुन रहा है। ने ऊँची आवाज में पुकारा—"कौन है ?"

भिड़काया हुआ दरवाजा धीरे से खुला और अनूप ने हुए भीतर प्रवेश किया--"बाहर जी नहीं लगा। सोचा, नई अम्माँ से ही बातें करूँ...." वह हँसते हुए बोला, एका-एक उसकी आकृति गम्भीर हो गई—"यहाँ आकर देखा तुम पण्डित के साथ कोई आवश्यक बात कर रही हो, तो ही कुछ देर तक चहलकदमी करता रहा...." कहकर वह कोच पर बैठ गया।

रसना और पंडित को विश्वास-सा हो गया था कि अनूप अवश्य ही उनकी गुप्त बात सुन ली है, परन्तु अनूप की से यह नहीं प्रकट होता था कि उसने कोई भयानक बात सुनी है उसकी बाह्य रूपरेखा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

"तुम जाओ पण्डित !" रसना ने पण्डित को आज्ञा तत्पश्चात् अनूप से बोली--"अनूप ! तुमने पण्डित की और बातचीत सुनी ?"

"नहीं, पराई बात सुनना मैं बुरी बात समझता हूँ, अम्माँ ! ऐसी आदत मेरी नहीं...." अनूप ने सरलता से उ दिया। अब रसना को विश्वास हो गया कि अनूप कुछ भी सुन सका है। नहीं तो अपने पिता के विरुद्ध साजिश की सुनकर वह धधकती आग हो गया होता।

रसना ने निश्चिन्तता की साँस ली और अनूप की बगल कोच पर आ बैठी—"आज तुम कुछ उदास दिखाई पड़ते अनूप ?" उसने कहा।

"नहीं तो...." सूखी हँसी हँस पड़ा अनूप, परन्तु उसके मुख पर उसको आन्तरिक विकलता की छाप अंकित हो गई, जिसे उसने बड़ी सावधानी से छिपा लिया।

अनूप लगभग चार घंटे तक रसना के साथ रहा। रसना ने विविध मनोरंजक बातों में उसे उलझाये रखने की चेष्टा की, परन्तु अनूप के चेहरे की उदासीनता नहीं गई। अन्त में वह उठ खड़ा हुआ और रसना से सिनेमा जाने का बहाना कर सीधे बरकछा की ओर घूमने चल पड़ा। जाते समय रसना ने सिनेमा देखने के लिए पाँच रुपये का नोट उसे दिया। अनूप के चले जाने के दस मिनट बाद ही पंडित घबड़ाया हुआ दौड़ा आया और रसना से बोला "हजूर, बड़े सरकार इधर ही आ रहेहैं ...."

"रायबहादुर !...." रसना के मुख से आश्चर्य की चीख निकल पड़ी। "जी हाँ ?" पंडित हाँफता हुआ बोला—"उनकी भंगिमा हिंसक पशु सी हो रही है। हाथ में छड़ी लिए और पैर पटकते हुए वे चले आ रहे हैं। अब क्या होगा—क्या होगा हजूर ? लक्षण अच्छे नहीं दीखते...भगवान् जाने क्या होनेवाला है..."

"बेमौत मरना होगा....समझे !" रायबहादुर निहालचन्द की तीव्र आवाज कमरे में गूंज उठी ! रसना और पंडित गिरते-गिरते बचे। इस समय बीच दरवाजे पर क्रोध से काँपते हुए रायबहादुर खड़े थे। उन्होंने बायें हाथ से अपना कलेजा दबा रखा था। शायद उनकी बीमारी, आवेग एवं क्रोध के कारण तीव्र हो उठी थी। उनका सारा बदन काँप रहा था।

'बड़े सरकार !...." पंडित ने कुछ कहना चाहा।

"चुप ..." गरज उठे रायबहादुर—"कमीना कुत्ता कहीं का...." वे आगे बढ़ आये और रसना के सामने आकर खड़े हो गये—"तेरी सारी करतूत जान चुका हूँ मैं। तेरे नस-नस की कारगुजारी, तेरे मिनट-मिनट का इतिहास मुझे मालूम हो चुका है दगाबाज औरत ! तूने मुझे खूब उल्लू बनाया...." क्रोधित

रायबहादुर के हाथ की छड़ी ने रसना के पीठ का चुम्बन
वह चीख उठी, मगर कुछ बोली नहीं—"बोल !-बोलती
नहीं ?....मैं जान चुका हूँ-जान चुका हूँ कि गहने चोरी नहीं
थे, वह तेरी जालसाजी थी। विकल को तू नष्ट करना चाहती
उससे कठोर बदला लेना चाहती थी, क्योंकि उसने तेरी वासना
मूल्य तिरस्कार द्वारा चुकाया था ? काँप रही है ?
अपने पापों की कहानी सुनकर तेरे रोंगटे खड़े हो रहे है
वह बदमाशों का अड्डा हनीमून होटल तेरा ही है। तू ही
अधिष्ठात्री है और तेरा प्रेमी पण्डित सका कर्ता-धर्ता ?
जानता हूँ कि पंडित तेरा प्रेमी है और तू है कामी कुतिया !
भयानक रात्रि की घटना मैंने अपनी इन्हीं बूढ़ी आँखों से
थी, जिस दिन तूने इस नारकीय नर-पिशाच पंडित के साथ
इस दहकती जवानी का क्रय-विक्रय किया था। वासना का
घृणित दुष्कृत्य देखकर मैं क्रोध से काँप उठा था। मन में
कि तुम दोनों प्रेमियों का खून पी लूँ, मगर शान्त होकर
रहा। बुढ़ापे में शादी करके मैंने एक भयानक भूल की थी,
तुम्हारा सुख-संसार विनष्ट कर दूसरी भयंकर भूल किस
करता ?...." रायबहादुर हाँफने लगे —"तेरा क्षण-क्षण का
मैं जानता हूँ....यह भी जान चुका हूँ कि अनूप को तू
कर चुकी है। सकी सरलता को तूने अपनी मुट्ठी में कर
है....इधर देख ! मेरे बुढ़ापे का वीभत्स रूप देख ! यह
बुढ़ापा, सभी को आक्रांत करता है। यह प्रलयंकारी बुढ़ापा,
को एक दिन निगल जाता है। कोई इससे अछूता नहीं बच
यह बुढ़ापा है, जो आकर कभी नहीं जाता....अपनी ओर
....अपनी इस जवानी का मादक रूप देख ! यह छलकती हुई
सभी को मदहोस बनाती है, हंसा-हंसा कर, नचा-नचाकर
यह वह जवानी है, जो जाकर कभी नहीं आती...."
आवेग से गिरते-गिरते बचे। उन्होंने बाएँ हाथ से अपना
जोरों से दबा लिया। दर्द बहुत तेज था।

"चुप रहिये, कृपा कर चुप रहिये!" रसना बेंत-सी काँप रही थी।

"वासना की पुतली! अब तेरे लिए कोई रास्ता नहीं...." कठोर स्वर में बोले रायबहादुर —"अब तेरे लिए कारागार है, फाँसी है....मैं अभी पुलिस को बुलाता हूँ...." रायबहादुर तेजी के साथ उस कमरे से बाहर निकल गये।

रसना को होश रहते हुए भी होश नहीं था। वह विक्षिप्त-सी खड़ी थी। उसकी आँखे भय से पत्थर हो गयी थीं। उसका चेहरा कागज-सा सफेद पड़ गया था। वह हताश होकर कुर्सी पर गिर पड़ी।

परन्तु दूसरे ही क्षण बगलवाले कमरे से आती हुई रायबहादुर की भयानक चीख सुनकर उसकी बेहोशी टूट गयी दर्दनाक चीख के साथ-साथ किसी भारी वस्तु के जमीन पर गिरने का शब्द हुआ और पुनः शान्ति छा गई। रसना घबड़ाई-सी उस ओर दौड़ी।

मिर्जापुर शहर में रायबहादुर निहालचन्द की मृत्यु का समाचार विद्युत गति से फैल गया। जनता हाहाकार कर उठी। उनके प्रेमी मित्रों ने दाँतों तले उँगली दबा ली, जब उन्होंने सुना कि रायबहादुर किसी कारण से अपनी पत्नी रसना देवी पर बिगड़ रहे थे, एका-एक पुराना रोग तीव्र हो उठा और कमरे से तेजी के साथ बाहर निकलते हुए धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े। गिरते ही उनकी हृदय गति बन्द हो गयी। कलेजे की बीमारी उन्हें बहुत दिनों से थी और डाक्टरों का कथन था कि अधिक मानसिक उद्वेग के कारण किसी भी समय उनकी मृत्यु हो सकती है, वही हुआ भी।

देखते-देखते रायबहादुर के बँगले पर काफी भीड़ जमा हो गई।

शहर के उस सबसे बड़े रईस के इस दयनीय निधन पर सभी को आँसू आ गये। रायबहादुर की पत्नी रसना एवं पुत्र अनूप

कुमार बहुत सन्तप्त थे। अनूप तो पागल-सा हो गया था। रसना ने कृत्रिम शोक प्रकट करने में कमाल कर दिया था। रसना का सहचर पंडित भी उससे एक इंच भी पीछे नहीं था।

शोकमग्न जनता ने सहस्रों की संख्या में दाह क्रिया में भाग लिया। किसी तरह रोते-कलपते एक सप्ताह व्यतीत हुआ। एक दिन जब कि अनूप किसी कार्यवश कहीं गया था, बंगले पर रसना और पंडित एक एकान्त कमरे में गुप्त बातें करने में तल्लीन थे।

"अब तो भेद खुलने की आशा नहीं !" पंडित ने कहा।

"नहीं-नहीं ! ऐसा न समझो !...." रसना बोली।

"बातचीत में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यद्यपि अनूप के ढंग से यह नहीं प्रतीत होता कि वह हमारा भेद जानता है, परन्तु उससे सावधान रहने में ही भलाई है। रायबहादुर के मरने के बाद अनूप सारी सम्पत्ति का मालिक है। उसे मिलाये रखने में ही लाभ है। फिर समय आने पर यह काँटा भी सरलतापूर्वक दूर किया जा सकता है।"

* * * *

"अरी अम्मा ! कल तो डर और ताज्जुब से मर ही गई थी मैं—" गुलाब ने कहा।

"मुझे भी बेहद अफसोस हुआ, जब मैंने देखा कि एक पुलिसमेन विकल के पीछे पड़ा है और विकल !....वह तो बड़ा ही नादान छोकरा है...." कहकर, अफजल हँस पड़ा—"रास्ते में उसके रिक्शे से कोई बकरी दब गई थी। पास ही पुलिसमेन खड़ा था। उसने विकल को रुकने का इशारा किया, मगर वह डर कर भाग चला। पुलिसमेन ने भी उसका पीछा किया। यहाँ आने पर दो रुपये उसके हाँथ पर रख दिये, बस चलता बना...खुदा कसम ! ये पुलिसवाले पूरे कसाई होते हैं—टुकड़खोर हैं सारे-के-सारे..."

"आज बाजार नहीं जाओगे ?...."

"जाऊँगा ! तुम थोड़ा-सा पुलाव मुझे दो—जरा पेट तो भर लूँ...." अफजल बोला। गुलाब ने थोड़ा-सा पुलाव ला दिया खाकर, एक गिलास पानी पीकर वह उठ खड़ा हुआ और सर पर सफेद दुपल्ली टोपी रखकर बाहर निकल पड़ा।

● ● ●

एक रिक्शावाला अपना रिक्शा लिये स्टेशन की ओर से आ रहा था। रास्ते पर खड़े एक बाबू साहब ने आवाज दी—"वो रिक्शा....वो रिक्शावाले....! गुदौलिया चलना है....क्या लेगा ?" दीन रिक्शावाला उनके पास पहुँचकर कहा—"दो आने बाबूजी...."

"नहीं, एक आने दूँगा। लेना हो तो चल।" बाबूसाहब ने कहा।

"पेट नहीं भरेगा बाबूजी !" रिक्शेवाले ने प्रार्थना की।

"पत्थर चबाकर भर लेना—" कहते हुए बाबूसाहब रिक्शे की ओर बढ़े।

"मैं नहीं चल सकूँगा बाबू....आप दूसरा रिक्शा कर लें।"

"नहीं ले चल सकेगा ?—" क्रोध से बाबूसाहब काँप उठे—"सूअर का बच्चा !" वे थे सभ्य वेष-भूषावाले एक धनी बाबूसाहब और वह था एक गरीब रिक्शा वाला विकल !

"क्या है ?....है क्या....बाबूसाहब ?"

बाबूसाहब ने देखा, एक दीर्घाकार भयंकर मुखाकृति वाला मुसलमान उससे प्रश्न कर रहा है। बाबूसाहब बोले—"देखो, जरा इस कमीने रिक्शेवाले को !.... गुदौलिया चलने को दो आने माँग रहा है—चार पैसे में तमाम रिक्शे दौड़ रहे हैं। क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ?"

"नहीं, हुजूर ! भला आप झूठ कहेंगे ?—" उस दीर्घाकार मुसलमान ने कहा, फिर रिक्शेवाले से बोला—"विकल ! तुम घर जाओ मुझे—रिक्शा दो, मैं बाबूसाहब को गुदौलिया पहुँचा दूँगा...."

"अफजल भाई तुम पागल तो नहीं हो ?...."
विकल ने कहा—"स्टेशन से गुदौलिया केवल चार पैसे में—गजब कर रहे हो तुम !...."

"तुम रिक्शा छोड़कर जाओ !...." कहते हुए अफजल ने आँख से विकल को इशारा किया—"आइए बाबूसाहब ! यह रिक्शा मेरा ही है—कभी-कभी यह आदमी इसे चलाकर कुछ पैसे कमा लेता है...." उसने बाबूसाहब से कहा ।

बाबूसाहब उत्साह के साथ रिक्शे पर जा बैठे । चार पैसे बच जाने की खुशी में वे फूले न समाये । न जाने कितने निर्दयी पैसे वाले गरीबों के दो पैसे काट कर सुख का अनुभव करते हैं । गरीबों के ही पैसे पर उनकी गुजर है....दोनों का खून चूस-चूसकर ही तो इतने मोटे हो जाते हैं !

अफजल रिक्शा उठाकर चलने लगा । स्टेशन से गुदौलिया आने में एक जगह निराला पड़ता है । यहाँ से एक सड़क सीधी दाहिनी ओर को निकल जाती है । यहाँ आकर अफजल बोला—"दाहिनी वाली सड़क से चल रहा हूँ. हुजूर ! इधर से ही गुदौलिया पहुँचा दूँगा—" और बिना बाबूसाहब की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए उसने रिक्शा उस सड़क पर मोड़ दिया ।

लगभग दो फर्लाङ्ग जाने पर एक जगह सुनसान देखकर अफजल ने रिक्शा रोक दिया । बाबूसाहब घबड़ा कर बोले—"क्यों क्या हुआ ?...."

"उतरो ?...." गरजा अफजल । बाबूसाहब की हिम्मत मर गई । घबड़ाई आवाज में बोले—"तुम....तुम !"

"मैं तुम्हारी मौत हूँ...." अफजल ने आगे बढ़कर बाबूसाहब, का गला पकड़ लिया और कसकर उसने उसके मुँह पर कई झापड़ जड़ दिये । बाबूसाहब का सर चकरा गया । मगर अफजल का क्रोध शान्त न हुआ । उसके दिमाग में अभी तक बाबूसाहब की

गाली घूम रही थी, जिसे उन्होंने विकल को दी थी—'सूअर का बच्चा, कमीना....!''

"हमलोगों को गरीब जानकर गाली देते हो....इसी मुँह से इसी मुँह से..." अफजल की चौड़ी हथेली बाबूसाहब के मुँह पर पुनः दो बार जा पड़ी "लाओ ! पास में जो कुछ हो, सीधे से इस हाँथ पर रख दो....नहीं तो खुदा कसम ! जान से मार डालूँगा...." अफजल ने हाँथ फैला दिया और काँपते हुए बाबूसाहब ने उसके हाथ पर जो कुछ उनके पास था, रख दिया। कुल नौ रुपये कुछ आने थे। अफजल ने बाबूसाहब को ढकेल दिया और रिक्शा उठाकर तेजी के साथ भाग चला। बाबूसाहब औंधे मुँह गिर कर जमीन सूँघते रहे।

● ● ●

"बहुत जल्दी आ गये ?...वे कहाँ हैं ? मिले थे कि नहीं ?"

"वे रिक्शा लेकर गये हैं, भाभी !" विकल ने कहा—"क्या बताऊँ ? एक बाबू से झगड़ा हो गया था। ये अमीर भी कितने निर्दयी होते हैं ?...अफजल भाई पहुँच गये, नहीं तो वह मुझे परेशान कर मारता। अफजल भाई उसी बाबू को रिक्शा पर ले गये हैं। रास्ते में उसे बहुत परेशान करेंगे, ऐसा उन्होंने मुझे इशारे से बताया था—"

"बैठो !...खड़े क्यों हो ?" गुलाब ने कहा।

"कहाँ बैठूँ ?" विकल बोला—"चारपाई पर तो कपड़े फैला रखे हैं।"

"अरी अम्मां इस मोढ़े पर क्यूँ नहीं बैठते ?"

"तब तुम कहाँ बैठोगी ?...." विकल मुस्कराकर बोला।

"खड़ी रहूँगी मैं, तुम बैठो भी तो-दिन भर रिक्शा खींचते-खींचते थक गये हो !"—गुलाब ने कहा और विकल का हाथ पकड़कर झटके के साथ उसे मोढ़े पर बैठा दिया।

"तुम्हें मेरी बड़ी फिक्र रहती है ?"—गुलाब ने कहा।

"भाभी हो न !...मेरे लिए तुम भी तो कम परेशान रहती–" विकल ने उत्तर दिया।

"क्या करूँ, तुम अकेले हो न ! अगर तुम्हारी देख-रेख करूँ तो दूसरा कौन बैठा है जो तुम्हारी खबर ले। तुम लापरवाह हो कि खुदा जानता है, दिन भर रिक्शा खींचना रात को देर तक जाग कर न जाने क्या-क्या लिखना––यही तो तुम्हारा काम है....क्या लिखा करते हो ?––एक दिन तुम्हारा वगैरह चीर-फाड़कर आग पर रख दूँगी...."

"नहीं भाभी ! ऐसा कभी न करना–कितनी अच्छी हो तुम !...." गुलाब ने मधुर भंगिमा से विकल की ओर देखा और विकल ने सहज सरल दृष्टि से देखा यौवन की अर्ध-प्रस्फुटित कलिका गुलाब की ओर। दोनों के हृदय में दो विभिन्न प्रकार के संघर्ष होने लगे ! गुलाब का अंग-प्रत्यंग विकल की इस बात से रोमांचित हो उठा था––तुम कितनी अच्छी हो भाभी !– उसी समय उसके नेत्रों के समक्ष अफजल की क्रूर एवं आकृति नृत्य कर उठी। उसने घृणा से नेत्र मूँद लिए। पुनः नेत्र खोलकर विकल की सुघर आकृति पर दृष्टि डाली। उसकी दृष्टि में वासना न थी, निकृष्ट प्रेम न था—वासना रहित स्वच्छ स्नेह एवं अपनी भाभी के लिए अतुल श्रद्धा ! गुलाब जिसने अभी तक यौवनानन्द का रसास्वादन नहीं किया था, विकल की उस दृष्टि का मतलब क्या समझती ? उसके हृदय का उद्वेलित मंथन वासना का रूप धारण कर उसके रग-रग को मसलने लगा। उसकी आँखों में रह-रह कर अफजल की क्रूर मूर्ति एवं विकल की सौम्य आकृति नाचने लगी। उसके हृदय में आया कि वह दौड़कर विकल को अपनी कोमल बाँहों में कस ले और उस पर अपनी समस्त यौवन-निधि न्यौछावर कर दे।

विकल के हृदय में एक दूसरा ही संघर्ष हो रहा था ! वासना उससे कोसों दूर थी। वह सोच रहा था अपने एकाकीपन की

जानता ! कि वह संसार में अकेला ही आया है। वह अपनी जन्मकथा जानता है और यह भी जानता है कि समाज के किसी क्षुद्र नर-पिशाच ने उसकी माता को अपनी वासना का साधन बनाकर उसे जन्म दिया है। वह अकेला है। उसका कोई साथी नहीं, कोई सहारा नहीं। जो कुछ सहारा था भी उसे त्याग कर वह इस गरीब महल्ले में आ बसा है। यहाँ उसकी खबर लेने वाले दो अद्भुत प्राणी हैं, भयानक अफजल और सौन्दर्यमयी गुलाब !....गुलाब को वह बहुत चाहता है, गुलाब के प्रति उसके हृदय में प्रगाढ़ श्रद्धा है। उसके जीवन की बागडोर गुलाब के हाथ में है।—उसके कहने से वह उठता है और उसके कहने से बैठता है।

"विकल !"

"हाँ, भाभी !"

"कभी तुमने किसी को प्यार किया है...." गुलाब का यह प्रश्न आकस्मिक परन्तु गूढ़ था।

विकल हँसता हुआ बोला—"केवल एक ही को प्यार कर सका हूं, भाभी !"

"किसे ?...." विकल के अत्यन्त सन्निकट आ रही गुलाब।

"तुम्हें !"

"मुझे ?....या अल्ला ! क्या कहते हो तुम ?...." गुलाब ने आवेश में विकल का हाथ पकड़ लिया।

उसी समय अफजल ने कमरे में प्रवेश किया। गुलाब चौंक कर विकल से दूर हट गई। अफजल अपनी दुपल्ली टोपी खूँटी पर टाँगते हुए विकल से बोला—"खूब छकाया....खुदा कसम ! खूब छकाया बाबू साहब को, यह देखो ?...." अफजल ने जेब से कई रुपये निकालकर विकल के आगे फेंक दिये—"चार पैसे की जगह इतने रुपये बसूल कर लाया हूं, सूद में दो चार चाँटे भी लगा आया। सालों तक याद रखेंगे हजरत !...फिर कभी किसी गरीब का पैसा हजम करने की कोशिश न करेंगे..."

'ये तो इतने सीधे हैं कि खुदा कसम ! क्या बताऊँ...'' गुलाब ने कहा।

''सीधा नहीं, गधा है यह विकल। नहीं जानता कि यह दुनिया सीधे से कोई बात नहीं मानती—'' अफजल ने कहा— ''विकल ! तुम आज यहीं बैठे हो....और दिन तो इस वक्त अपने कमरे में बैठे हुए लिखने में मशगूल रहा करते थे।''

''भाभी से बातें करने में देर हो गई...''

''खूब ! बहुत खूब ! गुलाब, इसे रोज बातों में फँसाये रखा करो....देखता हूँ कि यह लिखते-लिखते पागल हो जायेगा। न कुछ फायदा न कुछ मजा। इस तरह तो इसकी हालत खराब होती जा रही है-'' अफजल बोला।

तीनों हँस पड़े।

८

रायबहादुर निहालचन्द की मृत्यु हुए आज तीन हफ्ते व्यतीत हो चुके हैं। अभी तक रसना अनूप और पण्डित मिर्जापुर में ही हैं !

अनूप ने जमींदारी के मैनेजर के साथ रहकर कुछ दिनों तक जमींदारी का काम देखते रहने का निश्चय कर लिया था और इस लिए वह प्रातः काल से ही कहीं गया हुआ था। बँगले पर रसना और पण्डित थे, मगर वे भी चुपचाप बैठे न थे। वे राय-बहादुर निहाल चन्द के कागज-पत्रों का गुप्त रीति से निरोक्षण कर रहे थे।

रायबहादुर के बंगले में एक छोटी-सी कोठरी थी, जो गैर-जरूरी कागजातों से ठसाठस भरी थी। रसना इसी कोठरी के हर एक कागज को ध्यानपूर्वक देख रही थी कि कदाचित कोई काम की वस्तु निकल आए। पण्डित भी उसके कार्य में यथाशक्ति सहायता दे रहा था।

''देखिए तो—यह लिफाफा कैसा है ?''—पण्डित ने रसना

और एक बड़ा-सा लिफाफा बढ़ा दिया, जिसे अभी-अभी ही ने कागजों के ढेर में से पाया था। रसना ने लिफाफा लेकर नपूर्वक देखा उस पर छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था—

"मुझ अभागिन के एकमात्र अकेले पुत्र विकल के लिए !"

सुखदा

लिफाफे पर यह लिखावट पढ़ते ही रसना चौंक पड़ी—"ओह ! त बड़े काम की चीज मिल गई...." उसने कहा।

"क्या है ?....कैसा है...." पण्डित ने अत्यन्त उत्सुक होकर ा।

"उस दिन की बात याद है, जिस दिन रायबहादुर सॉलिसिटर बात चीत कर रहे थे, हम और तुम बगल के कमरे में छिपे हुए सुन रहे थे ?...."

"मुझे खूब याद है, हुजूर..." पंडित बोला।

"कहा था न कि मरते समय विकल की माँ ने एक लिफाफा दिया था, परन्तु उस लिफाफे को न जाने कहाँ रख है...."

"जी हाँ कहा था। क्या यह वही लिफाफा है, जिसे विकल देने के लिए विकल की माँ ने बड़े सरकार को दिया था ?"

"हाँ, यही है वह !..." कहकर रसना ने लिफाफे को अपने उज के अन्दर डाल लिया और अन्य कागजों को देखने लगी !

"नई अम्माँ...." दरवाजे पर से आवाज आई। रसना ने कर देखा अनूप सामने खड़ा है ! रसना और पंडित दोनों संक-से हो उठे—क्योंकि रायबहादुर के पुराने कागजों को देखना दोनों के लिए कदापि उचित नहीं था।

"क्या हो रहा था, नई अम्माँ ?" अनूप ने पूछा—"कागज देख रही थी क्या ?....अच्छा किया, कोई काम की चीज ?"

"वही तो देख रही थी अनूप, कि कोई काम का कागज निकल

आवे, मगर कुछ न मिला। ये सब रद्दी कागज है" रसना कहा। लिफाफे की बात उसने एकदम छिपा ली!

"बाहर सॉलिसिटर साहब बैठे हैं, आप से भेंट करना हैं-" अनूप ने कहा।

सॉलिसिटर का नाम सुनते ही रसना काँप उठी—"तुमसे कहाँ मिले ?"—उसने पूछा।

"आज प्रातःकाल से ही मैं उनके यहाँ था—आइये!" अनूप इस प्रकार घूम पड़ा कि रसना को पुनः कुछ पूछने का ही न मिला। आगे-आगे अनूप और पीछे-पीछे रसना तथा बैठक में आए। रसना को देखकर वृद्ध सॉलिसिटर गांगुली नमस्कार किया।

"कहिए, क्यों तकलीफ की आपने ?" रसना ने पूछा।

"मैं एक बहुत आवश्यक कार्य से आपके पास आया हूँ, जी! स्वर्गीय राय बहादुर अपनी सारी सम्पत्ति वसीयत कर हैं...." सॉलिसिटर साहब बोले।

"वसीयत ?" रसना हर्ष से उछल पड़ी—"किसके नाम ?"

"विकल बाबू के!" हलाहल के समान सॉलिसिटर के रसना के कानों में प्रवेश कर गए। वह चीख पड़ी—"विकल नाम वसीयत कर गए हैं ?"

"विकल चोर था—उसने मेरे गहने चुराए थे। अब छिपकर बैठा हुआ है...." रसना ने कहा। उसकी विचित्र हो गई थी।

"जी नहीं...." शान्त स्वर में सॉलिसिटर बोले—"बाबू चोर नहीं थे। मृत्यु के कुछ दिन पहले रायबहादुर ने निर्दोष होने के अकाटय प्रमाण अदालत में पेश किए थे, विकल बाबू पर आरोपित सभी अभियोग हटा लिया गया और

कर दिया गया....अब विकल बाबू पर कोई अभियोग
रहे !''

"सुनते हो !....सुन रहे हो, अनूप !" रसना बोली।

"जी हाँ....सब कुछ पहले ही सुन चुका हूँ मैं, नई अम्मा ?"
अनूप स्थिर भाव से बैठा रहा, उसके मुख पर तनिक भी परिवर्तन नहीं लक्षित हो रहा था।

"स्वर्गीय रायबहादुर की सारी जमींदारी की देख-रेख मैं करूँगा" सॉलिसिटर ने कहा—"अगर दस वर्ष तक विकल बाबू न आएँ या इसके बीच उनकी मृत्यु का यथेष्ट प्रमाण प्राप्त हो जाय, तो सारी सम्पत्ति अनूप बाबू की हो जायगी। तब तक अनूप बाबू को पाँच सौ रुपया महीना खर्च मिलेगा और यदि कोई विशेष कार्य आ जाय तो दो हजार तक दिया जा सकता है। अनूप के विवाह आदि का सम्पूर्ण भार भी मुझ पर रहेगा। इस कार्य के दो सौ रुपये मासिक मुझे मिला करेंगे। इसके सिवा और भी कई बातें हैं...."

"और मुझे ? मुझे क्या मिलेगा ?...." रसना उतावली से बोली।

"आपको हर हालत में केवल दो सौ रुपये मासिक !"

रसना के पैर तले की जमीन खिसक पड़ी।

दो दिन बाद रसना, अनूप और पंडित बनारस के लिये रवाना हुए। रसना और पंडित हनीमून होटल में आये। अनूप अपने घर में चला गया ! जमींदारी का कार्य मैनेजर और सॉलिसिटर देखने लगे।

० ० ●

अर्धरात्रि की भयानक नीरवता चारों ओर व्याप्त थी। हनीमून होटल के अपने नीजी कमरे में बैठी हुई रसना उस बड़े से लिफाफे का निरीक्षण कर रही थी, जिसे उसने रायबहादुर के रद्दी कागजों

में पड़ा पाया था। एक बार ध्यानपूर्वक लिफाफे को उलट देखने के पश्चात उसने सावधानी से लिफाफा फाड़ा। अन्दर से कई कागज नत्थी किये हुए निकले। ऊपर का कागज धानी से पढ़ने लगी ! उसमें लिखा था—पाप का भीषण मुझे विदग्ध कर रहा है। समाज ने मुझ अबला के साथ परिहास किया और मैंने सब कुछ केवल इसलिए सहन किया कि बड़े होगे तो मेरी दुर्गति का उचित बदला ले सकोगे। तुम मेरे जाने पापों के परिणाम हो—पापपुत्र हो। वासना के दो ने अपनी वासनाग्नि शान्त करने के लिये जो कुछ किया, विषाक्त फल हो तुम। तुम्हारा कोई नहीं—तुम अकेले हो। समाज तुम जैसे पुत्रों को प्रश्रय देना अपनी शान के समझता है अपना अपमान समझता है। उफ् ! तुम कितने हो, मेरे बेटे !

तुम बड़े होकर अपने क्रूर जन्मदाता से अपना अधिकार तुम्हारा जन्मदाता बहुत धनवान एवं समाज का प्रतिष्ठित है—उससे तुम अपने हिस्से का भाग मांगना। उसकी जायदाद पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है। मगर वह सीधे से न हो तो इन पत्रों के प्रमाण पर, जो कि इस लिफाफे में बन्द हैं, अदालत की शरण लेना। तुम्हारे जन्मदाता का पूरा पता, गले में पड़ी छोटी सी सोने की ताबीज में बन्द है। उसे से तोड़कर देख लेना।

—सुखदा

पत्र पढ़कर रसना कुछ सोचने लगी। शायद विकल के का नाम जानने को वह अत्यन्त उत्सुक थी, मगर जिस विकल के पिता का पता बन्द था, वह तो विकल के गले में रसना के लिये उसे पाना अत्यन्त दुर्लभ था।

विकल को क्या मालूम था कि उसके गले में पड़ी हुई सोने की चीज, जिसे उसने धनियों का आभूषण समझा था और जिसे चोरी के अभियोग लगने पर, भागते समय एक सुनार के यहाँ बहुत कम पर बेच दिया था, इतना कीमती था। विकल के दुर्भाग्य ने अब उसका साथ नहीं छोड़ा था।

रसना ने दूसरा कागज निकाला। वह सुखदा के प्रेमी का लिखा एक पत्र था—

सुखदे !

तुमने वचन मांगा है ! मैं वचन देता हूँ कि विवाह करूँगा तो तुम्हीं से करूँगा। पिता की अप्रसन्नता, समाज का अवरोध कोई मुझे रोक न सकेगा। मैं तुमसे शादी करूँगा, अवश्य करूँगा। मेरी प्रत्येक जायदाद पर तुम्हारा एवं तुम्हारी सन्तान का पूर्ण अधिकार होगा, तुम विश्वास रखो। मेरे ऊपर सदय बनो। हम तुम एक हैं। हमारा तुम्हारा प्रेम अमर है, और ....!

तुम्हारा—
रा० र०

रसना ने दूसरा पत्र पढ़ा—

प्यारी सुखदा !

तुम्हारा उत्तर पाकर अपार हर्ष हुआ। मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। हमारा तुम्हारा सम्मिलन पूर्ण मधुमय होगा ! आज शाम को सिनेमा हाउस पर मिलना, फिर हमलोग जीवन का वास्तविक आनन्द उपभोग करेंगे।

—रा० र०

रसना ने तीसरा पत्र खोला, यों लिखा था—

मेरी सुखदा !

उफ् ! कल की बात सोचता हूँ तो मदहोश-सा हो जाता हूँ,

कितने सुखकर थे वे स्वर्गीय क्षण ! कितना माधुर्य था उस प्रणय सम्मिलन में ! जी चाहता है सदा उसी में डूबा रहूँ। आशा है तुम प्रतिदिन निश्चित स्थान पर मिलती रहोगी। एक बार स्वर्गीय सुख प्रदान कर, निराश न कर देना।

इसके पश्चात् रसना कई पत्र पढ़ गई, जिसमें वासनामय प्रेम की चर्चा के अतिरिक्त और कुछ न था। उससे केवल यही प्रकट होता था कि सुखदा और उसके प्रेमी का यह घृणित व्यापार काफी समय तक जारी रहा। एक पत्र यों था —

सुखदा !

क्या यह सत्य है ? क्या तुम्हें सचमुच गर्भ है ? यदि यह है, तो हम दोनों का सर्वनाश होने में देर नहीं — उफ् !

इसके बाद का पत्र इस प्रकार था—

सब कुछ पिताजी को मालूम हो गया है। समाज में काना होने लगी है। आज मैं कालेज से रिस्टिकेट कर दिया गया हूँ। पिता जी बहुत बिगड़ गये हैं। मुझसे अब मिलने की चेष्टा न करना—मेरी आशा छोड़ दो। मेरी शादी शीघ्र होने वाली है। अपने पाप का फल, अपनी जवानी की भूल का परिणाम, तुम भोगो। मुझसे कोई मतलब नहीं....

—रा० र०

अन्तिम पत्र में यों था—

हतभागिनी !

मेरी आशा छोड़ दो। तुम्हें लड़का हुआ है तो मैं क्या करूँ उस बच्चे से मेरा क्या सरोकार ? तुम आज समाज से बहिष्कृत होकर मिर्जापुर में रह रही हो, तो मेरा इसमें क्या दोष ? तुम्हारे लिये मैंने क्या कम दुःख भोगा है ? मैंने अपने उज्वल मुख पर कलंक-कालिमा लगाई, केवल तुम्हारे कारण ? अब मेरे पास कोई पत्र भेजना, नहीं तो पढ़ने के पहिले ही जला डालूँगा।

—रा० र०

पत्र समाप्त कर चुकने पर रसना ने एक ठण्डी साँस ली। यह एक प्रेम-कहानी थी, जो आज से २१ वर्ष पूर्व घटित हुई थी— परन्तु उसे सोचकर आज भी रसना काँप उठी ! उफ् ! यौवन का यह भीषण दुष्परिणाम !

रसना ने सब पत्रों को सावधानी से आलमारी में रख दिया। फिर वह सोचने लगी कि यह 'रा० र०' कौन हो सकता है ? उसने अपने सभी परिचितों के नाम पर ध्यान दिया, परन्तु 'रा० र०' का पता न चला।

दरवाजे पर खटके की आवाज हुई और दूसरे ही क्षण पण्डित ने प्रवेश किया—"हुजूर ! अब तक जाग रही है आप ?" पूछा। "हाँ कुछ जरूरी कागजात पढ़ रही थी—" रसना ने कहा।

इसके पश्चात् पण्डित ने उस कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया। उसी समय घड़ी ने साढ़े बारह बजाये।

३

"कुछ पता लगा ?"

"जी नहीं ! काफी परेशान हुई, पूरा मुहल्ला छान डाला, उनका पता न चला ! उस मुहल्ले में तो रिक्शेवाले और लोग ही रहते हैं। मालूम होता है कि आपने पता गलत था—" कान्ता ने कहा।

"नहीं-नहीं देवीजी !" 'उजाला' के सम्पादक बोले—"पता ठीक था। उसी पते से भेजा हुआ व्यथित का ए लेख अभी-अभी मिला है। आप अवश्य गलत जगह पहुँच गई ...।"

"हो सकता है !" कहने को तो कान्ता ने यह कह दिया, मगर किसी प्रकार यह विश्वास नहीं हो रहा था कि यह साहित्य-सेवी एक उजाड़ तथा गरीब मुहल्ले में रहता होगा।

"आपको आश्चर्य होता है ?" सम्पादकजी ने पूछा।

"आश्चर्य की तो बात रही ही है—" कान्ता ने कहा "ऐसा लेखक, इतने निकृष्ट मुहल्ले में कभी नहीं रह सकता। अमूल्य रचनाओं का पुरस्कार तो बहुत मिलता होगा,

फिर क्यों वे ऐसी जगह रहना पसन्द करेंगे ? – ''

'आपका अनुमान गलत है....'' सम्पादकजी मुस्कराये, फि
बोले – 'वे अपनी रचनाओं का पुरस्कार नहीं लेते। यद्यपि
चाहें तो उनकी प्रत्येक रचना पर कई सौ के पुरस्कार मिल सक
हैं, एक बार उन्होंने लिखा था कि साहित्य-सेवा का पुरस्कार रुप
से आँकना निकृष्टतम विचार है।''

''बडा उच्च आदर्श है उनका – '' कान्ता को महान् आश्च
हुआ – ''तभी तो मैं उनसे भेंट करने को अत्यन्त लालायित हूँ....''

''आप एक कार्य करें। व्यथित के नाम पर एक पत्र लि
कर मुझे दे दें मैं डाक से उनके पास भेज दूंगा। पत्र द्वारा
मिलने का स्थान तथा समय निश्चित कर लें....'' सम्पादक
बोले।

कान्ता ने तुरन्त ही एक पत्र लिखा—

''श्रद्धेय व्यथित' जी,

मैं आपकी रचनाओं से अत्यन्त प्रभावित हुई हूं। क्या आ
दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करेंगे ?

—एक अपरिचि

सम्पादकजी ने कान्ता का वह पत्र पोस्ट द्वारा 'व्यथित'
पास भेज दिया। तीसरे दिन 'व्यथित' का उत्तर मिल गया
उन्होंने 'उजाला कार्यालय' में दूसरे दिन पांच बजे सन्ध्या को मिल
का आश्वासन दिया था।

० ० ०

''वाह ! आज बड़ी तैयारी हो रही है—कहाँ जाने का इरा
है ?—'' अफजल ने पूछा। उस समय विकल दो पैसे वा
नट-सोप बदन में मलता हुआ स्नान कर रहा था। अफजल
सम्पर्क में आने के बाद यह पहला ही अवसर था, जब कि विकल
साबुन लगाकर स्नान किया था। इसी कारण अफजल को आश्च
हो रहा था।

''एक से मिलने जाना है'' कह दिया विकल ने।

''अच्छा !....'' अफजल को और भी ताज्जुब हुआ-

"अब तक तो मैं यही समझता था कि तुम अकेले हो....यह जान-पहचान वाला कौन आ गया ?—खुदा कसम ! तुम अपना कोई राज मुझे नहीं बताते ! ...गुलाब ! ...ओ गुलाब !" उसने पुकारा।

"क्या है !" अन्दर से गुलाब आ पहुँची।

"यह देखो !—" अफजल बोला "तुम्हारा विकल आज किसी से मिलने जा रहा है....क्यों, क्या खयाल है तुम्हारा ?"

"ए वाह ! उसी लड़की से मिलने जाते होंगे, जिसे रोज रिक्शे पर घर पहुँचाते हैं....है न यही बात विकल ?"

विकल ने हंसकर गुलाब की ओर देखा और फिर स्नान करने लगा ...स्नान करके उसने वही कपड़े पहने जो अफजल के सन्दूक में सुरक्षित रखे थे और जिसे पहनकर पहले-पहल वह अफजल से मिला था। आज पूरे सात महीने बाद आधुनिक वेष-भूषा के वे कपड़े पहने थे उसने।

तीन बजे थे, जब विकल आधुनिक वेष-भूषा द्वारा सुसज्जित होकर पूरा अप-टू-डेट बना था। अड़ोस-पड़ोस के लोग विकल को देखकर हँसने लगे, क्योंकि उन्होंने सदैव उसे पुराने चीथड़ों में ही देखा था। तैयार होकर विकल ने कहा "अफजल भाई ! जरा मुझे रिक्शे से पहुँचा तो दो—"

"हाँ भाई, अब तो आप पूरे बाबूजी बन गये हैं न, अब कैसे पैदल चलेंगे ..." गुलाब ने व्यंग किया —"जाओजी, पहुँचा आओ ! बेचारी रास्ता देखती होगी !—"

विकल शरमा कर रिक्शे पर जा बैठा ! अफजल ने रिक्शा उठाया और चल पड़ा। मुहल्ले वाले यह रंग-ढंग देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

* * *

आज वही दिन है जिस दिन 'व्यथित' से 'उजाला कार्यालय' में मिलने की व्यवस्था थी। कान्ता प्रातःकाल से ही प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन रही थी। उसे ऐसा मालूम पड़ रहा था, जैसे समय बहुत धीरे-धीरे सरक रहा है।

सेठ राकेश रमण किसी विशेष कार्य में तल्लीन थे। उसी समय-कान्ता ने आकर उनसे कहा—"आज मैं 'व्यथित' से भेंट

करने जा रहा हूँ, पिताजी !....अनुरोध करके उन्हें यहाँ अवश्य लिवा आऊँगी...."

"जरूर ! जरूर !..." सेठ जी बोले—मैं भी उन्हें देखने को अत्यन्त उत्सुक हूं...तुम उन्हें यहाँ अवश्य लिवा आना...."

चार बजते ही, जब पूर्णरूपेण तैयार होकर 'उजाला कार्यालय' जाने के लिए वह बाहरी बरामदे में पहुँची तो देखा अनूप खड़ा है। अनूप को महीनों पश्चात् देखकर कान्ता को प्रसन्नता हुई, परन्तु अमूल्य समय का ध्यान आते ही उदास पड़ गयी। क्या अनूप किसी दूसरे समय नहीं आ सकता था ? मगर शिष्टता के नाते उसे अनूप की अभ्यर्थना करनी ही पड़ी— आइये !

अनूप ने अभिवादन किया। दोनों ड्राइंगरूम में आकर बैठ गये—"बहुत दिनों के बाद दर्शन दिया !–कालेज भी नहीं आते थे...?" कान्ता ने पूछा।

"जी हाँ ! जी हाँ।" अपनी पेटेन्ट भंगिमा के द्वारा अनूप ने कहना शुरू किया—"बड़ी मुसीबत आ पड़ी थी...पिताजी का अकस्मात् ही देहान्त हो गया....हम सब लोग परेशानी में थे.... क्या बताऊँ ?...." कहते-कहते अनूप का चेहरा जर्द पड़ गया। ....पिता की याद ने उसके नेत्रों में आँसू भर दिए थे।

"आपके पिताजी का देहान्त ?..." कान्ता को आश्चर्य हुआ "—तो क्या आप मिर्जापुर के रायबहादुर निहाल चन्द के पुत्र है ओह...." अभी तक कान्ता को यह बात मालूम न थी। इसका कारण केवल यह था कि उसने अभी तक अनूप से केवल सभ्यतापूर्ण मित्रता का ही व्यवहार रखा था। आन्तरिक घनिष्टता का नहीं ! दो एक बार कान्ता के हृदय में अनूप की सरलता ने सहानुभूति अवश्य उत्पन्न की थी और कान्ता ने अनूप के विषय में देर तक चिन्तन भी किया था, परन्तु वह स्थायी न रह सका था।

बहुत देर तक बातें होती रहीं। अन्त में अनूप उठ खड़ा हुआ। बोला—"मुझसे बहुत अपराध हुआ, इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं। आते ही मैंने देखा था कि आप कहीं जाने को प्रस्तुत हैं, अत: मुझे दुःख है कि आपका इतना समम व्यर्थ नष्ट किया...." कहते

आ वह नमस्ते करके उठ खड़ा हुआ। कान्ता ने उसे बाहरी दर-
जे तक पहुँचा दिया। फिर खड़ी होकर किसी रिक्शे की प्रतीक्षा
ने लगी। आज उसका परिचित रिक्शा वाला विकल नहीं
खाई पड़ा था, नहीं तो सवारी की प्रतीक्षा न करनी पड़ती।

अभी बरामदे में खड़ी वह रिक्शे की प्रतीक्षा कर रही थी
उसने एक रिक्शे को अपनी ओर आते देखा। कुछ और पास
जाने पर उसने रिक्शे वाले को पहचान लिया। वह दीर्घाकार
था, परन्तु रिक्शा खाली न था। उस पर कोई सवारी
थी।

"हूँ! यह कौन? कौन बैठा है अफजल के रिक्शे पर?..." की आँखें आश्चर्य से चमक उठीं—यह विकल तो उस अभागे रिक्शे वाले की तरह नहीं मालूम पड़ता। आज यह साफ-कपड़े पहने हुए एक सभ्य युवक-सा दृष्टिगोचर हो रहा है।

अफजल ने दूर से ही कान्ता को देख लिया था, अतः पास आकर उसने कहा—"सलाम हुजूर!" और उसने रिक्शा रोक दिया। विकल यह नहीं चाहता था कि कान्ता उसे इस नवीन रूप में देखे। इसलिए अफजल के रिक्शा रोक देने पर उसे कुछ बुरा लगा, फिर भी वह चुप ही रहा और लज्जावश कान्ता की ओर से आँखें फेर लीं।

"यह विकल किसी से मिलने जा रहा है, हुजूर! मैंने सोचा इसे पहुँचा दूँ"—अफजल ने कहा! मगर कान्ता ने कुछ सुना नहीं, वह तो स्थिर दृष्टि से नवीन परिधान धारण किये हुए विकल को देख रही थी।

"हुजूर! कहाँ तक जायगीं आप?....आइये, पहुँचा दूँ।" अफजल फिर बोला।

"नहीं-नहीं! तुम विकल को ले जाओ—मैं दूसरा रिक्शा कर लूँगी...." कान्ता ने कहा।

"नहीं हुजूर, यह कैसे हो सकता है?....आप आइये, बैठिये।" अब तक विकल रिक्शे पर से उतर कर सड़क पर खड़ा हो गया था। वह बोला—"आप बैठिये....मुझे अधिक दूर नहीं जाना है। मैं पैदल ही चला जाऊँगा...."

विकल के नेत्रों में मूक आमन्त्रण का भाव देखकर कान्ता अस्पष्ट रूप से मुस्करा पड़ी। वास्तव में आज विकल का रूप बड़ा ही आकर्षक लग रहा था। वह आकर रिक्शे पर बैठ गई। अफजल रिक्शा लेकर दौड़ा। विकल पैदल ही आगे बढ़ चला।

जिस समय कान्ता 'उजाला कार्यालय' की विशाल बिल्डिंग के सामने रिक्शे पर से उतरी, उस समय पाँच बजे थे। कान्ता के उतर जाने तथा कुछ पुरस्कार पा जाने पर अफजल रिक्शा लेकर चला गया। कान्ता सम्पादकजी के आफिस-रूम की ओर बढ़ी।

सम्पादकजी उसका स्वागत करते हुए बोले—आप ठीक टाइम पर आ गई हैं, परन्तु 'व्यथितजी' अभी तक नहीं आये हैं। आ ही रहे होंगे – लेखक लोग कुछ लापरवाह तबीयत के होते हैं...."

कान्ता एक कुर्सी पर बैठ गई। सम्पादकजी पुनः अपने कार्य में व्यस्त हो गये। थोड़ी देर में एक चपरासी ने भीतर प्रवेश किया।

"एक बाबू आपसे मिलना चाहते हैं—" चपरासी ने कहा।

"वही होंगें...." सम्पादकजी कान्ता से बोले—"आप यहीं बैठिये। मैं उन्हें लेकर अभी आता हूं...." कहकर सम्पादकजी उठ खड़े हुए। कार्यालय के दरवाजे पर आकर उन्होंने देखा एक युवक मामूली सफेद कपड़े पहने खड़ा है। सम्पादकजी जानते थे कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य गुण से आंका जाता है, वेष-भूषा से नहीं, अतः उन्होंने शिष्टता-पूर्वक उस युवक की अभ्यर्थना की—"आइये व्यथित जी ?....वे आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

कान्ता ने सम्पादकजी के साथ इकहरे बदन के युवक को कमरे में प्रवेश करते देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसे लगा जैसे उसके पैर-तले की जमीन खिसक गई है और वह अधर में खड़ी है। वह युवक था उसका चिर परिचित रिक्शावाला—विकल !

कान्ता को वहाँ देखकर विकल सब कुछ समझ गया। उसका मुंह आवेश तथा लज्जा से मलीन पड़ गया। दूसरे ही क्षण तेजी से वह घूम पड़ा और पलक मारते कमरे से बाहर निकल गया।

सम्पादकजी अवाक् खड़े रह गये, कुछ बोल ही न सके। कान्ता बिखरे हुए विचार एकत्र करने लगी, परन्तु अपने आश्चर्य पर नियन्त्रण नहीं कर पा रही थी।

१०

रात्रि मानों आन्तरिक हृदय की कालिमा है और दिन, मुखाकृति का तेजोन्मय प्रकाश! अन्तर केवल यह है कि रात्रि और दिन साथ-साथ नहीं आते, परन्तु हृदय की कालिमा तथा मुख की उज्ज्वलता साथ-साथ आती है। प्रकृति के दुर्दान्त चक्र से भयावना होता है, यह मानवी चक्र!

रसना मानों रात्रि और दिन का साकार रूप धारण कर इस संसार में आई थी। उसका हृदय रात्रि की तरह कालिमापूर्ण तथा मुख उज्ज्वल था और उसका बाह्य-सौंदर्य दिन के शुभ्र प्रकाश के समान था। उसके हृदय में सदैव भयानक दुर्विचार तथा दुर्दान्त भावनाओं की उथल-पुथल होती रहती थी, परन्तु उसके मुखपर सदैव क्रीड़ा करती थी अनुपम सौंदर्य की मनमोहक छटा।

रसना की सारी आशालता पर तुषारापात हो गया, जब उसने सुना कि स्वर्गीय रायबहादुर अपनी सारी स्थावर तथा जंगम सम्पत्ति का उत्तराधिकारी निकल को बना गये हैं। उसे कभी इस बात की आशा न थी। उसने सोचा था कि सारी सम्पत्ति का अधिकारी अनूप ही होगा और अनूप को बड़ी सरलतापूर्वक रास्ते से हटा देगी। परन्तु ऐसा न हुआ, अतः उसे विश्वास करना पड़ा कि स्वर्गीय रायबहादुर बहुत पहले से ही उसकी सारी करतूतें जान गये थे।

मगर आज भी, जब अनूप हनीमून होटल में उससे मिलने गया तो अत्यन्त स्नेह से वह उससे मिली—"कहाँ से आ रहे हो?" उसने पूछा।

"कान्ता से मिलने चला गया था, नई अम्मा!" अनूप ने कहा—"मगर अधिक देर तक बातें न हो सकी। वह कहीं जाने को तैयार थी...."

कान्ता को अब तक रसना भूल गई थी, परन्तु अनूप के से उसे वह बात पुनः याद आ गई।

"क्या वह तुम्हें बहुत चाहती है, अनूप ?"—रसना ने स्मात् पूछ लिया।

"दृढ़तापूर्वक कुछ नहीं कह सकता, नइ अम्माँ ! पर उ आचरण से मैंने अपने प्रति किसी प्रकार का विरोधाभास पाया है...."

कुछ देर तक सन्नाटा रहा। एकाएक अनूप पूछ बैठा—" अम्माँ, वह लिफाफा कहाँ है ?"

"कौन लिफाफा ?" रसना का जैसे रोम-रोम काँप उठा।

"वही जो रद्दी कागजों में से तुम्हें मिला था...." अनूप मुख पर तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ था। पहले जैसी विराज रही थी उसके मुख पर—"जिस समय एका-एक मैं पहुँच गया था और तुमने जब पूछने पर भी कुछ नहीं बताया मैं चुप रह गया था, क्योंकि उस समय सॉलिसिटर साहब हुए थे। दूसरे मुझे विश्वास था कि उसका भेद तुम मुझे एक एक दिन अवश्य बता दोगी। तुम मेरी माँ हो—मेरा भला समझकर ही काम करोगी।"

"रसना ने अब छिपाना उचित न समझा। वह बोली "ओह ! वह लिफाफा ...वह लिफाफा तो मैं देख भी न सकी थी वह कहीं खो गया। कोई जरूरी लिफाफा नहीं था वह, अनूप !

उसी समय किसी स्त्री-कंठ की भयानक चीख अनूप के कानों में पड़ी। वह हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ—"यह कैसी चीख है, अम्माँ ?'

"कोई सीढ़ी पर से गिर पड़ा होगा—" रसना ने आगे बढ़कर अनूप का हाथ पकड़ लिया और उसे पुनः कुर्सी पर बैठा दिया कार्य में उसने बहुत जल्दी की, क्योंकि उसे भय था कि कहीं आश्चर्य में पड़कर वास्तविक घटना का आभास न पा जाय वह। परन्तु अनूप ने फिर कोई उत्सुकता नहीं प्रकट की। स्थिर बैठ गया था।

यद्यपि रसना ने जिस चीख को यों ही बातों में उड़ा दिया था, अनूप को कोई दिलचस्पी नहीं थी—फिर भी वह घटना बड़ी ...नक थी ! होटल के किसी अन्धकारपूर्ण कमरे में एक भत्स कांड हो रहा था। शहर के कुछ सभ्य गुण्डे जो सफेद पोशाक काले काम किया करते हैं, इस समम वहाँ एकत्र थे और राह ...ती हुई किसी युवती को पकड़ लाकर, मनमाना दुराचार कर थे। वहाँ मानों सरकार का राज्य नहीं, स्व-राज्य था। ...स वालों के पाकेट भरने के लिए जहाँ काफी पैसे हों वहीं व-राज्य है।

रसना अनूप से दस मिनट की छुट्टी लेकर होटल के निचले ग में आई और पण्डित को बुलाकर कहा—"कैसी चीख थी पण्डित ?"

"बात यह थी हुजूर !...." पण्डित बोला—"दारोगा साहब एक छोकरी पसन्द आ गई। लाचार हमें सब इन्तजाम करना पड़ा..."

"अनूप यहीं है। जो भी कार्य हो सावधानी से होना ...हिए...."

"बहुत अच्छा, हुजूर !" पण्डित जाने लगा।

"देखो..."

जाता-जाता वह रुक गया।

"विकल का पता लगाकर उसे खत्म कर देना बहुत जरूरी। जितनी जल्दी यह काम हो सके उतना ही अच्छा है। उसे अगर हो जाएगा कि अब उसपर कोई भी अभियोग नहीं है तो वह हो प्रकट होकर सम्पत्ति का अधीश्वर बन बैठेगा। वह रिक्शा है। उसका पता लगाकर कुछ गुण्डों के जरिये सब काम ठीक करा लेना, फिर तो उसकी मृत्यु का समाचार पाकर ...लिसिटर सब अधिकार अनूप को सौंप देगा—और उसके ...." रसना ने एक गुप्त इशारा किया। पण्डित के मुख पर एक भयानक मुस्कान खेल उठी।

* * *

अफजल और गुलाब के लिए विकल एक दीन-हीन एवं

सरल हृदय वाला युवक था, परन्तु साहित्य-जगत के लिए यह लेखक 'व्यथित' था, जिसकी आगभरी रचनायें पढ़कर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे। वह एक प्रसिद्धि-प्राप्त लेखक था और था एक दीन-हीन रिक्शावाला। रिक्शे से वह अपना पेट पालता था और कलम से वह साहित्य-सेवा करता था। यदि वह चाहता तो अपनी रचनाओं से प्राप्त पुरस्कार से संतोषप्रद जीवन व्यतीत कर सकता था, परन्तु वह ऐसा नहीं चाहता था। उसका ध्येय नाम कमाना था, पैसा कमाना नहीं। अफजल और गुलाब को क्या पता था कि विकल के जिस लिखने को वे बुरा समझते थे-वह बुरा होते हुए भी कितना अच्छा था। प्रसिद्ध लेखक 'व्यथित' के कितने ही प्रशंसक थे, कितने ही पाठक उसके लेखों को पढ़कर आत्मविभोर हो उठते थे। अनेक बार विकल के रिक्शे पर वे बैठे होंगे और अनेक बार विकल ने उन्हें गन्तव्य स्थान तक पहुँचाया होगा—परन्तु स्वप्न में भी उन्हें वह आभास न मिला होगा कि यही कृशकाय रिक्शावाला जिसे भद्दी गालियाँ देकर वे पुकारा करते हैं, वह एक असाधारण प्रसिद्ध लेखक 'व्यथित' होगा!

कान्ता विकल के रिक्शे पर बहुधा आया-जाया करती थी। उस गरीब युवक के प्रति हृदय में सहानुभूति थी, परन्तु क्या कभी उसने सोचा था कि वह लोकप्रिय लेखक, जिसे वह श्रद्धा करती रही है, यही रिक्शावाला होगा – यह विकल!

कान्ता शर्म से गड़ी जा रही थी यह सोचकर, कि उफ्! वह कितना बड़ा अपराध करती रही—सो भी लगातार कई महीनों तक। विकल के नहीं, 'व्यथित' के रिक्शे पर वह आजतक चढ़ती आ आ रही थी। कैसी विडम्बना है यह?

विकल के प्रति सहानुभूति एवं 'व्यथित' के प्रति श्रद्धा ने कान्ता के हृदय में एक नवीन रूप धारण कर लिया। सहानुभूति एवं श्रद्धा के संघर्ष से हार्दिक स्नेह एवं प्रेम का उद्भव हुआ। कान्ता आत्मविस्मृत-सी हो गई। उसने निश्चय किया कि वह विकल के पास चलेगी और उससे हाथ जोड़कर, घुटने टेककर

अपने अपराधों के लिए क्षमा की भीख माँगेगी।

विकल भी भयानक द्विविधा में पड़ा था। अब कान्ता को कैसे अपना मुँह दिखा सकेगा? यदि वह जानता होता कि उससे भेंट करने के लिए इच्छुक महिला कान्ता ही है तो वह कदापि न जाता। परन्तु अब तो सारा भेद खुल चुका था।

अब विकल रिक्शा लेकर कैसे उसके सामने जायेगा?....

यदि वह न जाय तो!....तो फिर कान्ता किसके रिक्शे पर चढ़कर आया-जाया करेगी! अनजाने में ही विकल कान्ता की असुविधा दूर करने के लिए उद्विग्न हो उठा। वह उसी समय उठकर अफजल की कोठरी में आया। अफजल उस समय खाना खाकर लेटा हुआ था।

विकल बोला—"रिक्शा लेकर उसके कालेज पर चले जाओ, अफजल भाई!" स्वर में अस्थिरता थी उसके।

"किसके कालेज पर?—" अफजल बैठ गया।

"उसी के!" विकल ने कहा—"रिक्शा नहीं जायगा तो...."

"तो वह आयेगी कैसे?...." गुलाब ने व्यंगमिश्रित स्वर में कहा, फिर अफजल को संकेत कर बोली—"तुमने अब भी नहीं समझा ये उसी लकड़ी के लिए कह रहे हैं।"

"ओह!...." अफजल हँसा। गुलाब का व्यंग उसे भी अच्छा लगा।

"थोड़ी देर में चले जाना..." विकल ने कहा।

"मगर तुम क्यों नहीं जाते? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है अब!" अफजल बोला। उसे विगत घटनाओं की कुछ भी खबर न थी।

"मैं न जा सकूँगा, तुम चले जाना...." कहकर विकल अपनी कोठरी में चला गया।

"खुदा कसम! पूरा सनकी है यह। मुझे रिक्शा ले जाने को कहकर आप कोठरी में बैठा हुआ कलम चलाता रहेगा...." अफजल के इस कथन में तनिक भी क्रोध की मात्रा न थी, प्रगाढ़ स्नेह था।

"चले जाओ न—नहीं जाओगे तो रूठ बैठेगा वह। फिर

मनाना मुश्किल हो जायगा !....'' गुलाब ने विकल की ओर सिफारिश की। वह भी विकल को पूरा अबोध ही समझती थी।

अफजल उठा। एक गिलास पानी पीकर गुलाब से बोला ''मैं जा रहा हूँ ! जरा उस छोकरे के पास जाकर देखना कि क्या तकलीफ है ?....''

''कैसी तबीयत है जी ?'' गुलाब ने अन्दर आकर पूछा !

''अच्छी तो है....''

''अच्छी तो नहीं मालूम पड़ती जी !''

''अच्छी है भाभी....एकदम अच्छी है !''

''झूठ !''

''बिलकुल सच।''

''तो फिर रिक्शा लेकर क्यों नहीं गये ?....'' गुलाब के एकदम पास आ रही।

''नहीं गया....''

''क्यों नहीं गये ?—''

''यों ही....''

''यों ही क्यों ?....''

''तुमसे मतलब !'' विकल की दृष्टि में उत्सुकता के स्नेह झलक रहा था।

''सच सच बता दो, नहीं तो ठीक नहीं होगा, विकल !—गुलाब ने धमकी दी।

''नहीं तो क्या करोगी, भाभी....''

''बताऊँ, क्या करूँगी ?''

''बताओ !''

''बताऊँ ?—''

''बताओ....''

''अरी अम्माँ...'' गुलाब हैरान होकर बोली—''बता दो तो मैं रूठकर बाहर चली जाऊँगी।''

''भाभी ! तुम तो कभी नहीं रूठीं—आज क्यों रूठोगी ?...''

''मैं कहती हूँ, बता दो....बता दो विकल !....'' गुलाब

हृदय पिपासित भंगिमा से विकल के मुख पर गड़ गये। विकल अनभिज्ञ था। बोला—"मैं उसे चाहता हूँ, भाभी!"

"किसे?" गुलाब की आँखों से आश्चर्य की ज्योति फूट पड़ी।

"उस लड़की को मैं चाहता हूँ, भाभी!...."

"हाय अल्लाह!...." गुलाब का स्वर आर्द्र हो गया—"एक दिन तो कहते थे कि तुम मुझे चाहते हो? आज कहते हो उसे चाहता हूँ?...."

विकल पशोपेश में पड़ गया। हकलाता हुआ बोला "क्या बताऊँ भाभी..." आगे वह कुछ न कह सका।

गुलाब रुआँसी हो सी गई। मस्तिष्क तीव्र वेग से चक्कर खाने लगा। उसके नेत्रों के समक्ष एक बार भयानक अफजल दूसरी बार विकल की सौम्य-मूर्ति आने जाने लगी।

गुलाब ने आहत स्वर में पूछा—"क्या यह सब सच है, विकल?..."

"बिल्कुल सच है, भाभी!...." विकल ने सरलतापूर्वक उत्तर दे दिया।

गुलाब जोरों से रो पड़ी—"उफ्....जालिम सितमगर!... जाओ मैं तुमसे नहीं बोलती!—" कहती हुई गुलाब आवेश में शीघ्रता से बाहर चली गई। विकल स्तब्ध चित्र लिखित सा खड़ा रहा। उसकी समझ में ही नहीं आया कि उसके प्रेम की बात सुनकर गुलाब रोयी क्यों?

अपने कमरे में आकर गुलाब ने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और चारपाई पर गिर पड़ी। फूट-फूटकर रोने लगी इस समय उसका हृदय ज्वालामुखी-सा धधक रहा था।

* * *

"आइये हुजूर?—अफजल ने कहा। कान्ता का मुख आज गम्भीर था। वह चुपचाप आकर रिक्शे पर बैठ गयी। अफजल रिक्शा लेकर चल पड़ा।

"विकल बाबू क्यों नहीं आये?...." कान्ता ने अफजल से पूछा।

अफजल को घोर आश्चर्य हुआ कान्ता के मुख से आज पहली बार विकल के लिए सम्मान-सूचक संबोधन सुनकर। आश्चर्यपूर्ण मुद्रा के बीच उसने उत्तर दिया—"उसकी तबीयत ठीक नहीं थी, हुजूर ?"

"क्या हुआ है उन्हें ?"

"कुछ नहीं हुजूर, कुछ नहीं। खुदा कसम! वह बिलकुल तन्दुरुस्त है....न आने का राज या तो वह जाने या आप ?...."

"मैं ?...." आश्चर्यभरे स्वर में कान्ता बोली।

"आप, हुजूर आप !....आप जरूर जानती होंगी....आपको उस नादान छोकरे से कितनी हमदर्दी है हुजूर, क्या वह मुझसे छिपी है ? आपके पास मोटर है, बग्घी है, यह है, वह है, मगर ....खुदाकसम! हुजूर आप हूर हैं...हम गरीबों की आप किस्मत हैं...."

"...." कान्ता कुछ न बोली। वह धीरे से मुस्करा पड़ी।

अफजल दौड़ता रहा, रिक्शा भागता रहा और कान्ता बैठी रही। कई मिनट बीत गये। एकाएक कान्ता ने पूछा—"कहाँ चल रहे हो अफजल ?...."

"हुजूर आपको घर ले चल रहा हूँ...."

"किसके घर ?...."

"आपके घर हुजूर और किसके ?...."

"नहीं! अपने घर ले चलो ?—" कान्ता के स्वर में दृढ़ता थी और अफजल के नेत्रों में था परम आश्चर्य का भाव !

"हुजूर आ ! आप मेरे गरीबखाने पर चलेंगी ?"

"क्यों नहीं, मुझे अपने यहाँ ले चलो—विकल से भेंट करूंगी—" कान्ता ने कहा। सारी बातें अफजल की समझ में आ गई। उसने प्रसन्नतापूर्वक रिक्शा मोड़ दिया और अपने मुहल्ले की ओर दौड़ चला।

* * *

विकल सोचने लगा—आखिर गुलाब उससे रूठकर भागी क्यों ? उससे क्या अपराध हुआ कि उसके भाभी का दिल दुःख गया ? मगर अनुभवहीन युवक किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सका।

वह बहुत देर तक सोचता रहा, परन्तु असफलता ही उसके हाथ आई। दुनिया को सीख देने वाला लेखक, आज एक युवती की पहेली का मर्म न समझ सका।

"विकल !....ओ विकल !...." अफजल की आवाज सुनाई पड़ी।

"विकल तुरन्त कोठरी से बाहर निकल आया, परन्तु यह क्या ? यह कौन ?....कान्ता को अफजल के साथ देखकर विकल पत्थर की मूर्ति बन गया। उससे कुछ भी करते न बन पड़ा ! उसने एक बार कान्ता की म्लान पड़ गई सुन्दर मुखाकृति पर दृष्टि डालकर आँखें नीची कर ली।

"नमस्ते !" शहद जैसे मीठे और शराब जैसे मादक स्वर में कान्ता ने अभिवादन किया।

विकल सहम गया—मुंह से कुछ न कहकर उसने अपने दोनों जुड़े हुए हाथ ऊपर उठा दिये।

"तुम्हें....आपको मैंने बहुत तकलीफ दी, विकल बाबू !...." कान्ता ने कहा।

विकल ने कृतज्ञता की दृष्टि से कान्ता की ओर देखा और उसे कोठरी में आने का इशारा किया। कान्ता कोठरी में आकर चारपाई पर बैठ गयी। विकल मोढ़े पर जा बैठा। अफजल अपनी कोठरी में चला गया।

"कौन है ?"—गुलाब ने पूछा।

"वही लड़की है...." अफजल का यह वाक्य मानों गुलाब के कलेजे को चाक कर गया—"विकल से मिलने आयी है ?...."

"क्या बातें हो रही हैं, दोनों में ?" गुलाब ने पूछा।

"खुदा कसम ! तुम बहुत नादान हो !....उन्हें बात करने का मौका देने के लिए ही तो मैं यहाँ चला आया हूँ..." अफजल बोला—"वे दोनों न जाने क्या बातें करेंगे...."

विकल और कान्ता बड़ी देर तक कमरे में निस्तब्ध बैठे रहे। मौन भङ्ग करने का किसी में साहस नहीं हुआ। दोनों के हृदय, दो भिन्न बातों पर चिन्तन करते रहने पर भी, एक दिशा की ओर

प्रवाहित हो रहे थे।

"आपने मुझसे ऐसा छल क्यों किया ?..." कान्ता को ही विवश होकर बोलना पड़ा, फिर भी उसके स्वर में स्त्री-जनित लज्जा एवं संकोच का आभास था।

"कृपया मुझे 'आप' कहकर सम्बोधन न करें...." विकल ने अनुरोध किया।

"मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए ?...."

"...." विकल चुप रहा !

"बोलिए....दुनिया से छिपे रहने की यदि जरूरत थी तो मुझसे क्यों छिपे रहे ?"

"मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि आपकी बातों का उत्तर दे सकूँ—"

"पर आपकी लेखनी में तो लोगों को पागल बना देने की शक्ति है खैर ! क्या मैं आपसे यह पूछने की धृष्टता कर सकती हूँ कि आप मुझसे घृणा क्यों करते हैं ?...." कान्ता का स्वर करुण था।

"घृणा ?...." विकल बोला—"आपसे भला मैं क्यों घृणा करूंगा ? मैं तो आपके कितने ही अहसानों के नीचे दबा हुआ हूँ।"

"मेरी एक बात मानेगें ?...."

"कहिये !"

"अब से आप रिक्शा कभी न खींचें...."

"क्यों ?"

"साहित्य-सेवा और शारीरिक-सेवा में महान् अन्तर है...." कान्ता के नेत्र विकल की आँखों में समा जाना चाहते थे।

"मुझे सेवक बनने में ही सन्तोष है..." इसके बाद ही विकल कहना चाहता था कि—यदि आप जैसों की सेवा करनी पड़े तो...परन्तु संकोच के कारण जबान तालू से सटी रह गई।

"क्यों आप सेवक क्यों बनना चाहते हैं ?"

"सेवा में ही संतोष है।" विकल का यह उत्तर गूढ़ था।

"आप नौकरी करेंगे।"

"किसकी ?"

"मेरी...."-कान्ता का स्वर लड़खड़ा गया।

"........" विकल चुप बना रहा।

"कहिए करेंगे न ?...."

"मुझे क्या करना होगा ?—"विकल पूछ बैठा, यद्यपि उसकी आन्तरिक इच्छा नौकरी करने की नहीं थी।

"केवल मुझे साहित्य की शिक्षा देनी होगी—"कान्ता ने कहा।

विकल का संकोच बहुत दूर हो चुका था। वह बोला—"क्या मिलेगा ?"

"जो आप चाहेंगे...."

विकल विचलित हो उठा कान्ता के इस उत्तर से। उफ् ! किस मुंह से बताये कि वह क्या चाहेगा, क्या चाहता है ? किस वाणी से बताये कि वह एक ऐसी वस्तु चाहता है जो अदेय ही नहीं दुर्लभ भी है।

"आप बोलते क्यों नहीं ?...." कान्ता ने कहा—"यदि आपको दो सौ रुपये मिले तो..."

विकल को यह सुन कर दुःख हुआ। वह बोला—"रुपयों का मैं भूखा नहीं हूँ।"

"तब किस चीज की भूख है आपको ?"—कहते-कहते कान्ता का मुंह न जाने क्यों आरक्त हो उठा।

"सहानुभूति की !"

"सहानुभूति....या और कुछ ?"

"कुछ की कामना मेरे अधिकार-सीमा में नहीं है।"

"तो आप तैयार हैं ?"

"आप की आज्ञा मैं कैसे टाल सकता हूँ ?"

" .... "

कान्ता ने अपने मनीबेग से पचास रुपये निकालकर विकल के आगे रख दिये....देखिए, अस्वीकार करेंगे तो मुझे दुःख होगा।

० ० ०

सेठ राकेशरमण उसे ध्यानपूर्वक देखने लगे। वह एक कागज

था जिसे अभी-अभी ही सेठ जी ने आलमारी से निकाला था। आज सेठ जी की मुखाकृति अत्यन्त म्लान थी। मालूम होता था मानों कोई मानसिक व्यथा उन्हें भयानक कष्ट दे रही है।

"उफ्—वह पाप....!" सेठ जी अपने आप बड़बड़ा उठे—"उस पाप की भीषण स्मृति है यह!...." उन्होंने उस कागज को जोरों से इस तरह पकड़ लिया, जैसे उनके हाथों से वह उड़ जाना चाहता हो। वे उसे लिये हुए एक कुर्सी पर आकर बैठ गये। किसी अतीत घटना की स्मृति ने उन्हें व्यथित कर रखा था। पुनः अपनी समस्त शक्तियाँ एकत्रित कर उस कागज पर दृष्टि दौड़ाने लगे।

न जाने कौन-सी भयानकता थी उस कागज में कि उनके मुँख से एक दीर्घ 'आह' निकल कर शून्य में विलीन हो गई। उनकी चेतना जाती रही और वे कुर्सी पर ही अचेत होकर लुढ़क पड़े। उनके हाथों से वह कागज उड़कर जमीन पर जा रहा।

कान्ता अभी-अभी कहीं से चली आ रही थी। 'आह' का स्वर सुनकर वह अपने पिता के कमरे में दौड़ी आई। उन्हें बेहोशी की हालत में देखकर वह सन्न रह गई। ऐसा कभी नहीं हुआ था परन्तु आज एकाएक उन्हें न जाने क्या हो गया था। उसने वह कागज उठाकर मेज पर रख पेपर-वेट से दबा दिया, फिर नौकर की सहायता से सेठ जी को उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। डाक्टर बुलाये गये। कई घण्टे बाद सेठ जी चैतन्य हुए।

उस दिन जब अनूप ने आकर कान्ता से नमस्ते किया, तो उसने ध्यानपूर्वक देखा कि कान्ता का चेहरा मलीन है। बातों-बातों में वह पूछ बैठा—"आज आप सुस्त क्यों हैं?"

"सुस्त तो नहीं हूँ...." कान्ता ने शुष्क हँसी-हँसकर कहा परन्तु उसका हृदय इस समय दारुण संघर्षों का आगार हो रहा था....उफ्! उसके पिता का यह रहस्यमय भेद कौन जानता है ....कौन जानता है कि समाज के आदरणीय नेता सेठ राकेश रमण ने भी यौवन-काल में कोई भयंकर पाप किया था!

"आप मुझसे कुछ छिपा रही हैं...." अनूप ने कहा।

"आप बैठिये, मैं चाय लेकर आती हूँ....'' कहकर कान्ता भीतर चली गई। अनूप मेज के पास एक कुर्सी पर आ बैठा। एकाएक उसकी दृष्टि मेज पर रखे हुए कागज पर जा पड़ी। वह पढ़ने का लोभ संवरण न कर सका। वही वह कागज था, जिसे कान्ता ने सेठजी के कमरे में पाया था ! उसमें लिखा था—

विश्वासघाती राकेशरमण !

मेरी निधि लूटकर, मुझे नष्ट-भ्रष्ट कर अब तू अपनी जान छुड़ाना चाहता है, तूने मुझे बरबाद किया है, तूने मुझे उजाड़ा है तूने मुझे पथ की भिखारिणी बना दिया है—! मेरी यौवन-कलिका चूर्णविचूर्ण कर, मुझे एक बच्चे की माँ बनाकर, अब तू मुझे दुत्कार रहा है। नरक के कीड़े !—नरपशु ! राक्षस ! दया कर, रहम कर, शर्म कर...!

तेरी त्यक्ता ?

सु०

"उफ् ! उफ्...'' अनूप ने अपना मस्तक पकड़ लिया। यह पाप ! और समाज के एक प्रमुख कर्णधार द्वारा !

उसने फिर वह कागज यथास्थान रख दिया।

१०

विकल ने रिक्शा खींचना बन्द तो कर दिया, परन्तु कान्ता से भेंट न कर सका। कान्ता नित्य, प्रतिदिन उसके आने की प्रतीक्षा करती, परन्तु उसकी आशा निराशा में परणित हो जाती, जब वह देखती कि दिन का श्वेत प्रकाश, रात्रि की दुर्भेद्य कालिमा में परिवर्तित हो गया है।

विकल का रिक्शा यों ही पड़ा था। आजकल उसे रिक्शा खींचने में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी, क्योंकि अपने नवीन कार्य में थोड़े ही परिश्रम द्वारा वह कई गुना अधिक पैदा कर लेता था। अफजल को आश्चर्य अवश्य था विकल के इस परिवर्तन पर परन्तु गुलाब सब कुछ समझती थी। जिसने मुहब्बत के थपेड़े बरदाश्त किये थे वह क्यों न समझती ?

उस दिन बाजार से लौटकर अफजल सोधे विकल की कोठरी में गया। देखा विकल उदास बैठा है। नित्य की भाँति कुछ लिख भी नहीं रहा है। अफजल को देखकर विकल ने सर उठाया और कहा—

"आओ, अफजल भाई!"

"कैसी तबीयत है, विकल?" कहते हुए अफजल विकल के पास बैठ गया।

"अच्छी तो है..."

"खुदा कसम! तुम झूठ बोलना बहुत सीख गये हो...." अफजल ने मधुर झिड़की दी—"यह लो, उस लड़की ने दिया है...." उसने विकल के हाथ पर एक कागज रख दिया—"घूमता-घामता उसी तरफ निकल गया था। उसने तुम्हें बुलाया है—जाओगे न?"

"...." विकल कुछ न बोला। वह उस कागज को पढ़ने लगा। लिखा था—साहित्य के देवता! क्या यह साहित्य-सेवा झूठ बोलना भी सिखा देती है? तुमने आने को कहा था और मुझे साहित्य पढ़ाने का वचन दिया था—परन्तु आये नहीं। मैं नहीं जानती, तुम्हारी दृष्टि में मैं क्या हूँ, फिर भी प्रार्थना करती हूँ कि कम से कम साहित्य-सेवा की दृष्टि से मेरी आकांक्षा की पूर्ति करो।

'आप' न लिखकर 'तुम' लिखने के लिये क्षमा करना। तुम बड़े दयालु हो।

तुम्हारी प्रतीक्षा में

कान्ता—

विकल ने पत्र पढ़कर एक ठण्डी साँस ली। अफजल ने पूछा

"क्या लिखा है....?"

"बुलाया है।"

"और कुछ?"

"मुझसे पढ़ेगी...."

"तुमसे !...." अफजल चिल्ला पड़ा—"वह तुमसे पढ़ेगी ? वह तुमसे क्या पढ़ सकेगी ?..."

"मैं उसे सब कुछ पढ़ा सकता हूँ। मैं ससे ज्यादा पढ़ा हूँ, अफजल भाई—" विकल बोला।

"सच ! खुदा कसम ! तुम कितने बेइमान आदमी हो ! तुमने अब तक मुझसे बताया भी नहीं...." अफजल की आँखें सर पर चढ़ गई थीं। उसका भयंकर मुख आश्चर्य से और भी भयंकर हो उठा था।

"दो सौ रुपया महीना मिला करेगा—" विकल ने कहा।

"ओह, तब तो तुम बड़े गुनी आदमी मालूम पड़ते हो ! आदाब अर्ज है हुजूर, आदाब अर्ज !..." मजाक किया अफजल ने। और एकाएक उसकी दृष्टि विकल के कमरे में पड़ी तो वह चौंक पड़ा। जगह-जगह कूड़ा करकट पड़ा था। सामान सब तितर-बितर थे। उसे लगा, जैसे कमरे में कई दिनों से झाड़ू नहीं लगा है।

और झाड़ू लगता भी तो कैसे ? झाड़ू लगाने वाला गुलाब तो आजकल विकल से रूठकर गुम-सुम रहती थी और विकल ऐसा अबोध था कि गुलाब को मना भी नहीं सकता था !

"गुलाब !....ओ गुलाब !...." पुकारा अफजल ने।

"...." यद्यपि गुलाब बगल वाले कमरे से सुन रही थी, मगर बोली नहीं।

"भाभी आजकल मुझसे नहीं बोलतीं, इधर आती भी नहीं—" विकल बोला।

"क्यों....?" अफजल को आश्चर्य से अधिक विषाद हुआ।

"यह पागलपन है....खुदा कसम, तुम दोनों पागल हो..." अफजल हँसते हुए बोला—"जाओ-जाओ उससे माफी माँग लो। जरा कमरे में झाड़ू तो पड़े। अगर उसका रूठना तुम्हें अच्छा लगता हो तो, फिर झाड़ू देने पर कमर कसो...."

"...." विकल अजीब द्विविधा में पड़ा था। वह कैसे मनाये अपनी रूठी हुई भाभी को ! वह मनाने की कला तो जानता ही

नहीं। अब तक वही रूठा करता था—मगर इस बार तो सकी भाभी रूठी है।

"जाओ ! जाते क्यों नहीं !" अफजल ने कहा—"मैं फिर बाजार जा रहा हूँ। आज अभी तक कुछ मिला नहीं है। वह कागज तुम्हें देने के लिये आ गया था...."

अफजल कोठरी से निकलकर सीधा बाजार चला गया। विकल धीरे से उठकर गुलाव के कमरे में आया। कमरे में प्रवेश करते ही उसने देखा कि गुलाब पीढ़े पर बैठी हुई, पैर के नाखून से जमीन कुरेद रही है। उसकी आँखें जमीन का वक्षस्थल देख रही थीं। विकल आकर उसके सामने संकुचित-सा खड़ा हो गया, फिर भी गुलाब ने अपने नेत्र नहीं उठाये।

"भाभी...."

"..." गुलाब चुप रही !

"मुझसे गलती हुई— माफ कर दो भाभी !" यद्यपि विकल से कोई गलती नहीं हुई थी, फिर भी रूठी भाभी को मनाने की गरज से कह दिया। मगर गुलाब चुप रही, कुछ बोली नहीं। सर ऊपर उठा कर देखा भी नहीं। यह गुलाब का क्रोध नहीं 'मान' था। मामूली सी बात पर वह रूठने का अभिनय कर रही थी।

"बोलो भाभी ! केवल एक बार बोल दो, चाहे फिर कभी न बोलना—" विकल का स्वर आर्द्र हो उठा।

"..." गुलाब का कलेजा मुँह को आ रहा था विकल की बातें सुनकर। वह फूट-फूटकर रो पड़ना चाहती थी। फिर भी उसके मुख से शब्द न निकले।

"सिर्फ एक बार मेरी ओर देख लो, भाभी !....मेरी अच्छी भाभी !"

मगर तब भी गुलाब ने नहीं देखा। विकल का सरल हृदय टूक-टूक हो गया। उसकी आँखें पसीज उठीं—उसके नेत्रों से कई अश्रु-कण टपक कर गुलाब के आगे चू पड़े। गुलाब ने चौंक कर अपना सर उठाया तो देखा, विकल कमरे से बाहर जा चुका था।

गुलाब जोर से रो पड़ी। उसने जमीन पर गिरे उन अश्रु-बिन्दुओं को सिर झुकाकर चूम लिया, फिर बदहवास-सी चारपाई पर आ पड़ी।

उधर कोठरी में विकल भी हिचकियाँ ले रहा था। वह विकट उलझन अब भी न सुलझी। दोनों के हृदय इस उलझन को सुलझाने को लालायित थे--फिर भी न सुलझा सके।

कभी-कभी हम किसी कार्य को करने की कामना रखते हुए भी नहीं कर पाते, यह हमारे मन की कमजोरी ही तो है!

* * *

मनुष्य में सरलता का आधिक्य कभी-कभी उसका शत्रु बन जाता है। अनूप का हृदय सरलता का आगार था। वह इतना अबोध था कि उसकी समझ में ही नहीं आया कि मनुष्य दुष्कर्म क्यों करता है? यद्यपि वह अपनी नई अम्माँ के कारतूतों से अनभिज्ञ नहीं था, परन्तु उसकी सरलता, उसकी विचारधारा को एक बात पर दृढ़ नहीं रहने देती थी।

कभी वह सोचता—नई अम्माँ पिशाचिनी हैं। उन्हीं की करतूतों से घर-बार नष्ट हो गया और हो रहा है।

मगर तुरन्त ही इसके विपरित सोचने लगता—नई अम्माँ क्यों घर नष्ट करेंगी? वे तो दयामयी हैं। समय-समय पर उसे रुपया देती रहती हैं उसका कितना ख्याल रखती हैं।

अन्त में वह अपनी सरलता के आगे परास्त हो जाता है और उसके हृदय में अपनी अम्माँ के प्रति जो कुछ दुर्भावना रहती, वह सद्भावना में बदल जाती वह रसना को देवी समझ कर अपने हृदय को धैर्य दे लेता।

आज भी जब वह प्रसन्न मन से महीमून होटल में घुसा तो उसे अपनी माता ही समझता था, परन्तु रसना के हृदय में वात्सल्य-स्नेह लेशमात्र भी न था। अभी तो वह उच्छृंखल युवती थी—अभी तो उसके हृदय में वासना की लहरें हिलोरें मार रही थीं, वह पुत्र का मूल्य क्या समझ सकती थी? जिसने अभी तक

स्वयं पुत्र का मुँह न देखा हो, वह दूसरे के पुत्र को प्यार कैसे कर सकती थी ?

"नई अम्मां !" कमरे में प्रवेश करते ही अनूप ने पुकारा।

"क्या है अनूप....? आओ बैठो !...." रसना ने कहा—"आज कुछ उदास-से दीख रहे हो। बात क्या है ?"

"कुछ नहीं, नई अम्मां !... कुछ नहीं...." अनूप ने हँसने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहा—"क्या समाज के कर्णधार भी दुर्दान्त कुकर्मों के कर्ता होते हैं ? यह सोचकर दिमाग चक्कर खा रहा है—"

"साफ-साफ कहो न क्या बात है ?—"

"वह जो कान्ताकुमारी है न, नई अम्मां... मेरी क्लास-फेलो"—अनूप कहने लगा—"उसके पिता राकेशरमण का समाज में श्रेष्ठ स्थान है, परन्तु वे अपराधी हैं, युवावस्था में उन्होंने भयंकर पाप किया है..."

"कैसा पाप...." रसना ने अधीरतामिश्रित उत्सुकता से पूछा।

"उन्होंने एक लड़की का स्त्रीत्व लूटा था, जिससे एक सन्तान भी थी—"

"अच्छा...!" रसना की उत्सुकता आश्चर्य में बदल गई। एकाएक उसे सुखदा के पत्रों की याद आ गयी उसे।

"बात यह हुई कि आज जब कान्ता से मिलने गया तो कान्ता कुछ उद्विग्न-सी दीख पड़ी। जब वह चाय लाने गई तो मैं उसकी मेज पर रखे हुए पत्र को पढ़ने लगा। उसी पत्र से ये बातें मालूम हुई जब वह चाय लेकर लौटी तो उसने घबराहट की दृष्टि से पत्र की ओर देखा। तुरन्त ही मुझसे कहने लगी कि मैं पत्र की बात किसी से न कहूँ। उसी से यह भी मालूम हुआ कि उसी पत्र को पढ़ते-पढ़ते आज सेठ राकेशरमण बेहोश होकर गिर पड़े थे। अभी मैं वहीं से चला आ रहा हूँ।"

यह खबर सुनकर रसना को जो हर्ष हुआ, वह वर्णनातीत

था। आज महीनों बाद उस भेद की गुत्थी सुलझी, जिसके लिए वह रात-दिन परेशान रहती थी। आज उसके सामने सुखदा के गुप्त प्रेमी तथा विकल के पिता रा० र० का भेद खुला।

उस दिन रसना ने अनूप को खूब अच्छा-अच्छा खाना खिलाया। अनूप अपनी नई अम्माँ की इस सहानुभूति पर फूला न समाया और उस समय तो उसके हर्ष का पारावार न रहा जब कि होटल से लौटते समय रसना ने उसके हाथ पर दस-दस रुपये के पाँच नोट रख दिये।

अनूप के जाने के बाद रसना ने पण्डित को बुलाया। पंडित तुरन्त ही आ उपस्थित हुआ —"क्या है हुजूर ?" —उसने पूछा।

"देखो।" रसना बोली—"सेठ राकेशरमण का एक भेद मुझे अभी-अभी मालूम हुआ। उनसे कुछ रुपया वसूल किया जा सकता है...."

"कैसा भेद, हुजूर ? ...."

"विकल सेठ राकेशरमण का पाप-पुत्र है...."

"अच्छा !...." पण्डित आश्चर्य से मुँह बाये खड़ा रह गया।

"विकल को अपने रास्ते से जल्द-से-जल्द दूर कर देना चाहिए, नहीं तो वह दो दो अतुल सम्पत्तियों का अधिकारी हो जायगा। सेठ राकेशरमण की सम्पत्ति पर उसका न्याय-संगत अधिकार है और रायबहादुर निहालचन्द ने तो अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम वसीयत कर ही दी है...."

"मैं समझ गया...." पण्डित बोला "विकल को रास्ते से हटा देने में दो लाभ होंगे। एक तो यह है कि विकल की मृत्यु का विश्वास हो जाने पर, अनूप को रायबहादुर की सम्पत्ति मिलेगी—...और दूसरा यह है कि अनूप की शादी कान्ता से हो जाने पर अनूप ही सेठ जी का उत्तराधिकारी होगा..."

"ठीक !.. तुम ठीक समझे पण्डित...." रसना ने हर्ष-विह्वल होकर कहा।

* * *

कान्ता ने सर ऊपर उठाया, देखा— उसके स्वप्नों का चित्र

खड़ा था, साकार रूप लिये। वह सहम गई। आरक्त होंठों पर मधुर मुस्कान नृत्य कर उठी। साथ ही नेत्र लज्जा से झुक गये।

"...." और आज कान्ता कुछ न बोल सकी, केवल जुड़े हुए हाथ ऊपर उठा दिये। विकल आज शुभ्र परिधान धारण किये हुए था। आज उसकी वेष-भूषा ने उसकी प्रच्छन्न प्रतिभा को प्रकट कर दिया था।

कान्ता के आमंत्रण पर आज वह कान्ता के घर आया था।

"बैठिये !"

यह मधुर आह्वान विकल के लिए वरदान था। वह मन्त्र-मुग्ध-सा एक कुर्सी पर बैठ गया। एक दिन का गरीब रिक्शा-वाला आज उस धनी युवती के बराबर बैठने में लज्जा अनुभव कर रहा था।

"बड़ी कृपा की ! इतने दिन तक कहाँ थे ? आये क्यों नहीं ?"—कान्ता ने पूछा।

"नहीं आ सका, पर कोई विशेष कारण नहीं था...." विकल बोला—"अब तो बराबर आ सकूँगा ऐसी आशा है ..."

"मैंने पिताजी से आप की चर्चा की थी—वे आपकी रचनाओं को यथेष्ट आदर की दृष्टि से देखते हैं...." कान्ता ने कहा—"चलिये ! उनसे परिचय करा दूँ..."

सेठ राकेशरमण अपने कमरे में आराम-कुर्सी पर बैठे हुए किसी चिन्ता में तल्लीन थे। अब उनकी तबीयत ठीक थी, कि अभी चिन्ता ने उनका साथ न छोड़ा था।

"पिताजी !...."

सेठजी ने सर ऊपर उठाया। देखा—कान्ता के साथ एक सभ्य युवक खड़ा था। सेठजी का हृदय अनजाने में ही काँप उठा। विकल ने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें नमस्ते किया तो कान्ता विकल की ओर इंगित कर बोली—

"ये हैं श्री 'व्यथित' जी !...."

"ओ हो ! यही हैं विकल जी !" सेठजी को महान् आश्चर्य। उन्होंने सोचा था कि 'व्यथित' कोई वयोवृद्ध होगा।

"जी हाँ ! यही हैं...." कान्ता ने कहा—"मुझे रोज साहित्य आया करेंगे...."

"ठीक तो है ...." सेठजी बोले—"मैं भी यही चाहता हूँ कि थोड़ा साहित्य का भी अध्ययन कर लो...."

उस दिन बहुत देर तक विकल कान्ता के यहाँ रहा। कान्ता अपने पिता से विकल के रिक्शा खींचने की कहानी भी बता "सुनकर सेठजी को हार्दिक दुःख हुआ। कान्ता ने विकल को और टोस्ट से जलपान कराया। लाख अस्वीकार करने पर एक महीने का वेतन अग्रिम उसे स्वीकार करना ही पड़ा। दो घण्टे पश्चात् विकल ने विदा ली। कान्ता उसे कुछ दूर तक आई।

अभी सेठजी अपने कमरे में बैठे ही थे कि उनका नौकर आ। सेठजी ने उससे इशारे से पूछा—क्या है ?

"हुजूर ! एक श्रीमती जी आई है और आप से इसी वक्त चाहती है...." नौकर ने कहा।

"उनसे कह दो कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है—" सेठजी ने दिया।

"कहा था हुजूर !...." नौकर बोला—"मगर वे कहती हैं कि कार्य बहुत आवश्यक है...."

"कौन है वह ?"

"मैं पहचानता नहीं, हुजूर !"

"अच्छा भेज दो...." कहकर सेठ आराम-कुर्सी से उठंगकर गये। नौकर बाहर चला गया। एक मिनट के बाद ही सेठजी सुसज्जित कमरे में एक सौन्दर्यमयी युवती ने प्रवेश किया। युवती अपनी पतली कमर पर लहर देती हुई सेठजी के पास चली आई और सेठजी को बिना अभिवादन किये ही, कुर्सी पर बैठ गई।

"आप क्या चाहती हैं ?" सेठ राकेशरमण ने उस चरित्रहीन लगती युवती से पूछा।

"मैं आपसे केवल दो बातें करना चाहती हूँ—" कहकर युवती आकर्षक भंगिमा से मुस्करा पड़ी—"आप ही हैं राकेशरमण ?"

"जी हाँ !—आपको जो कुछ कहना है शीघ्र ही कह डालिए-मेरी तबियत ठीक नहीं है...."

"आपकी तबीयत क्यों ठीक नहीं है—यह मैं जानती हूँ..." युवती बोली —"दुराचारी पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता—"

सेठजी तड़प कर ठ खड़े हुए, मगर युवती शान्त मुद्रा में पूर्ववत् कुर्सी पर बैठी रही।

"आप आवेश में आ गये हैं....आवेश की बात ही है—" युवती हंस पड़ी—"आपके काले कारनामों से मैं भलीभांति परिचित हूँ, सेठ राकेशरमण !—"

"झूठी बात है..."

"चुप रहिये !....चुप रहिये, नहीं तो नौकर आ जायेंगे—फिर लाचार होकर मुझे नौकरों के सामने ही सुखदा का नाम लेना पड़ेगा...."

"सुखदा...सुखदा..." दो बार इस नाम का उच्चारण कर सेठजी बदहवास होकर पुनः कुर्सी पर बैठ गये।

"सेठ साहब !...." युवती क्रूरतापूर्ण हँसी हंस पड़ी—"आपके पापाचार की पूरी कहानी मैं जानती हूँ। वह पाप जिसे आज से बीस व पूर्व अपनी युवावस्था के प्रथम चरण में आपने किया था तथा एक भोली-भाली युवती को अपनी काम-लिप्सा का शिकार बनाकर उसे एक बच्चे की माँ बना दिया था। वह पाप ! आप सुन रहे हैं न ! मैं आपकी एक-एक बात जानती हूँ...."

"हे ईश्वर !" सेठजी इस आकस्मिक विपत्ति से घबड़ाकर हाँफने लगे।

"वह लड़का—यानी आपका पाप-पुत्र अब तक जीवित है। वह शीघ्र ही अपने अधिकार का दावा न्यायालय में करेगा..."

"दावा !....सुखदा..." सेठजी का शरीर पत्ते-सा काँप उठा।

"सुखदा को भेजे गये आपके हर एक पत्र अभी तक मेरे पास सुरक्षित हैं....उन्हीं के आधार पर वह दावा करेगा। मैं उसकी संरक्षिका हूं। आपकी सारी शाख धूल में मिल जायगी। समाज आप पर थू-थू करेगा। आप समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिये जायेंगे तब सुखदा के अपमान का बदला पूरा होगा।"

सेठजी काँप उठे—"नहीं नहीं ऐसा न कहो....नष्ट हो जाऊंगा मैं....तुम बोलो ! जो कुछ तुम मांगो मैं दे सकता हूं—मेरी बदनामी न करो। मैं अपमान से डरता हूं...."

"देंगे ?....आप देंगे ? तो लाइये दस हजार" युवती बोली।

"दस हजार !" सेठजी कम्पित स्वर में बोले !

"जरूरत पड़ने पर और माँगा जा सकता है अभी तो इतना ही चाहिए ! —"

सेठजी ने उस क्रूर-हृदय युवती की ओर एक बार कातर दृष्टि से देखा, फिर चेक निकालकर दस हजार का चेक उसे दे दिया। युवति चेक लेकर तीव्रगति से कमरे के बाहर हो गई।

१२

दूसरे दिन से ही कान्ता का साहित्य-अध्ययन प्रारम्भ हो गया। विकल उसे पढ़ाने के लिए प्रतिदिन सन्ध्या को आने लगा। पढ़ाई गम्भीरतापूर्वक होने लगी। कान्ता विकल की शिक्षण-पद्धति पर संतोष अनुभव करती और विकल को कान्ता की स्मरणशक्ति पर महान् आश्चर्य होता। कभी-कभी सेठ राकेशरमण भी उन दोनों के पास आ बैठते थे और विकल के मुँह से दुरूह विषयों की धारा प्रवाह व्याख्या सुनकर दंग रह जाते थे। विकल से उन्हें आन्तरिक सहानुभूति हो चुकी थी।

एक दिन विकल कान्ता को प्रेम का वैज्ञानिक विश्लेषण बता रहा था। उसने पूछा—"प्रेम के विषय में आपकी क्या धारणा है ?"

इस प्रश्न से कान्ता संकुचित-सी हो गई। उसके आरक्त कपोल क्षणिक लज्जा से और भी रक्तवर्ण हो उठे। यद्यपि विकल

ने यह प्रश्न कान्ता के कोमल भावों को जाग्रत करने के अ
से नहीं किया था, परन्तु बाद को अपने प्रश्न का गूढ़ार्थ
वह स्वयं लज्जित हो उठा।

"प्रेम स्वर्ग है —" कान्ता ने स्वर के कम्पन को दृढ़ता दबाकर शीघ्रता से कह दिया।

"जी नहीं...." विकल बोला—"आपकी धारणा गलत है। नरक है, धधकती आग है—जो हृदय को जला कर भस्म कर है, मानवीय दुर्बलताओं को उद्दीप्त कर उसे विनाश के मार्ग पर ढकेल देती है! जीवन की असीम कष्टदायक विभिषिका पूर्ण परिस्थितियों का ही नाम प्रेम है! प्रेम जीवन है....और मृत्यु भी!"

"कैसे?" कान्ता ने प्रश्न किया।

"जिसके प्रेम में मनुष्य मरता रहता है, उसी की मूर्ति को देख कर जीता है—यही प्रेम की व्याख्या है, जिसमें भी है और जीवन भी है ..."

"प्रेम धधकती आग कैसे है?"

"यह आप नहीं समझ सकतीं?...." विकल के नेत्र के मुख पर जा टिके—"यह अनुभव की बात है। अनुभवी इसे समझ सकता है—या तो समझ सकता है वह, जिसने f बेकस का दिल जलते देखा हो।"

"निशात में 'लव एण्ड डिवोसन' फिल्म आई है। अगर को अवकाश हो, तो चलिये देख आया जाय। शायद उसमें की उत्कृष्ट विवेचना हो—" कान्ता के स्वर में व्यंग का आभास था—और साथ ही विकल के लिए उसका प्रथम था, परन्तु था आकस्मिक! क्योंकि बातों का प्रवाह जिस पर था उसमें इस अनुरोध के लिए तनिक भी स्थान न था।

परन्तु विकल को स्वीकृति देनी पड़ी। क्योंकि कान्ता और उसका लक्ष्य एक था, ध्येय एक था—वह यह कि एक

के निकटतम सम्पर्क में आना।

o o o o

"आज आप पाँचवीं बार मेरे पास आई हैं...." सेठ राकेशरमण कम्पित स्वर में बोले—"पहली बार दस हजार रुपया दिया था। दूसरी, तीसरी तथा चौथी बार पाँच-पाँच हजार....आज आप पुनः आई हैं—इस बार कितना चाहती हैं ?"

"दस हजार !...." वह युवती बोली ! उसके मुख पर क्रूर-भंगिमा नृत्य कर रही थी।

"दस हजार !...." सेठ जी कुछ गर्म होकर बोले—"आपने मुझे एक दम पस्त-हिम्मत समझ लिया है ? याद रखिये, अब मै एक कौड़ी भी नहीं दे सकता—"

"नहीं दे सकते ?...." युवती कठोर स्वर में बोली—"तो अपनी बदनामी सहन करने को तैयार रहिए। कल ही वह आप का पाप-पुत्र अदालत में अपने अधिकार के लिए दावा कर देगा .."

"उसके पाप-पुत्र होने का सबूत क्या है, तुम्हारे पास ?"

"सबूत ?...यह देखिए !...." युवती ने एक लिफाफा दूर से ही सेठजी को दिखाया—"इस लिफाफे के अक्षर तो आप पहचानते होंगे ? यह सुखदा की लिखावट है....अब आप समझ सकते हैं कि मेरे हाथ में पर्याप्त सबूत हैं !"

सेठ राकेशमरण कांप उठे। अगर उन्होंने मेज पर सर न रख दिया होता, तो कुर्सी से नीचे लुढ़क पड़ते। वे धर्मभीरु थे—कायर थे। अपनी बदनामी के भय से उनके रोंगटे खड़े हो गये, सोचने लगे—उफ् ! समाज में किस प्रकार अपना मुख दिखला सकूँगा ? किस प्रकार समाज में पूर्व अर्जित कीर्ति स्थायी रख सकूँगा।

मस्तिष्क विकारों के वेग से भन्ना उठा। राहत पाने के

विचार से उन्होंने सर ऊपर उठाया तो, उसे विद्रूप हँसी हँसते हुए बैठे देखा। उनका मन क्रोध और घृणा से व्याकुल हो उठा। दराज खोलकर चेक बुक निकाली। दस हजार का चेक देते हुए दाँत पीस कर बोले—

"अब कभी न आना...."

• • •

"अब तो विकल मास्टर भी हो गया है—इधर तन्दुरुस्ती भी उसकी अच्छी हो गई है...." अफजल ने कहा! गुलाब ने 'हूँ' भर कर दिया। वह अब तक विकल से रूठी ही थी।

"तुम उससे बोलती क्यों नहीं?...खुदा कसम बड़ा जिद्दी हो तुम"....अफजल बोला।

"बोलने न बोलने से क्या फर्क पड़ जाता है!"—गुलाब ने कहा—"उनका सब काम तो कर ही देती हूँ—"

"बात तो नहीं करती?"

'हमदर्दी काम से जाहिर होती है–बातों से नहीं।" गुलाब के छोटे मुँह से यह बात सुनकर अफजल हैरत में आ गया।

"तुम्हारे दिल में उसके लिए सिर्फ हमदर्दी है मुहब्बत नहीं?" अफजल ने पूछा।

"मुहब्बत फेंकने की चीज नहीं, मेरे आका!"

"तुम्हारे चेहरे पर आजकल परेशानी क्यों रहती है?" अफजल ने पूछा, मगर गुलाब चुप रही। उसने मुँह फेर लिया, क्योंकि उसकी आँखें भर आई थीं।

• • •

दिन-प्रतिदिन कान्ता और विकल एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आते गये। उनके अनुभवशून्य हृदयों में एक दूसरे की आलोचना कर जो मृदु स्पन्दन होने लगता था, उसकी ओर उन दोनों का तनिक भी ध्यान नहीं था। जिस प्रेम को व्याख्या करने में वे

बहुधा तल्लीन रहते थे—वही निराशाकारी प्रेम धीरे-धीरे अनजाने में ही अपना भूतकार हाथ उनके ऊपर पसार रहा था।

"देखिए! यह विषय गम्भीर एवं गहन है, आप इसके चक्कर में न पड़ें?" कान्ता को पढ़ाते समय विकल ने कहा।

"क्यों?"

"क्योंकि यह आपकी समझ में कदाचित् न आ सकेगा—"

"तो आप समझा दीजिये न!" कान्ता ने सरलता से कह दिया।

"नहीं मैं नहीं समझा सकूँगा"

"तो यह कहिये कि...." कान्ता विमुग्ध भंगिमा से मुस्कुरा उठी—"अपनी असमर्थता का दोष आप मुझपर लाद रहे हैं?.... बताइये कौन अयोग्य है शिक्षक या छात्रा?"

"छात्रा....!" विकल ने कह दिया।

"कैसे?"

"नहीं, नहीं शिक्षक...." कहकर विकल हँस पड़ा!

"नहीं, नहीं छात्रा। अब तो आप खुश...." कहकर कान्ता ने विकल की ओर इस दृष्टि से देखा, कि उसका रोम-रोम सिहर उठा।

इसी समय नौकर भीतर आकर बोला—"एक बाबू आप से मिलना चाहते हैं...."

"कौन हैं वे?...."

"वही जो उस दिन आये थे।"

विकल से क्षमा माँगती हुई वह बोली—"मेरे एक मित्र आये हैं। आप बैठिये, मैं अभी आई। आप से मिलकर वे बहुत प्रसन्न होंगे...." कहती हुई वह कमरे से बाहर निकल गई।

दूसरे ही क्षण एक सुन्दर लम्बे युवक के साथ जब कान्ता ने उस कमरे में प्रवेश किया तो उस युवक को देखकर विकल घबड़ा गया, परन्तु वह युवक विकल को देखकर उसकी ओर हर्ष से लपका।

परन्तु विकल के मुख पर भय के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। एकाएक वह घूम पड़ा। युवक और कान्ता को बिना एक क्षण का अवसर दिये, वह तेजी के साथ कमरे के बाहर निकल गया। युवक और कान्ता विकल के इस आश्चर्यजनक पलायन पर स्तब्ध रह गये। थोड़ी देर बाद युवक ने पूछा—"यह तो विकल था न ?"

"आप इन्हें जानते हैं क्या ? मिस्टर अनूप कुमार !...." कान्ता को महान् आश्चर्य हुआ कि अनूप विकल का नाम तक जानता है।

"जी हाँ, वह मुझे ही देखकर भाग खड़ा हुआ है...." अनूप बोला—"आप कृपा कर जल्द-से-जल्द बतायें कि वह कहाँ रहता है—पहले तो रिक्शा खींचा करता था, नई अम्माँ ने बताया था। परन्तु इसके रहने की जगह उन्हें भी नहीं मालूम है। आप एक बार मेरे साथ चलिये, अपनी नई अम्माँ से आपकी भेंट करा दूँ। आपका जिक्र मैं उनसे कर चुका हूँ...."

कान्ता ने उसे विकल के रहने का पता बताकर, पूछा—"आपको देखकर वे भागे क्यों ?"

"वह चोर है—नई अम्माँ के पचास हजार के गहने चुराकर भागा था। उसके नाम वारण्ट था....परन्तु मेरे स्वर्गीय पिताजी ने कुछ दिन बाद वारण्ट रद्द करा दिया—पिताजी उसे बहुत चाहते थे—उनका दृढ़ निश्चय था कि विकल ने चोरी नहीं की है...."

"और आपका क्या ख्याल है ?" कान्ता ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"मेरा ख्याल है !...." अनूप लापरवाही से हँस पड़ा—"मेरा अपना ख्याल कुछ मूल्य नहीं रखता, कान्ता देवी !...और सच पूछिये तो मेरा विश्वास है कि चोरी इसी ने की है—नई अम्माँ भला झूठ क्यों बोलेंगी ?"

अनूप की सरलता उसे एक विचार पर दृढ़ नहीं रहने देती थी। कभी उसकी विचारधारा विकल का पक्ष ग्रहण करती थी और कभी अपनी नई अम्माँ का। वह युवक जो जी में आता था, बक जाता था। यह नहीं समझता था कि सुनने वाले पर उसका क्या असर होगा ?

कान्ता यह नहीं जानती थी कि अनूप की बातें तथ्यहीन होती है। उसमें सरलता की मात्रा रहती है, वास्तविकता भी नहीं। वह तो यह समझती थी कि अनूप जैसा सरल हृदय व्यक्ति कभी झूठ नहीं बोल सकता।

जिस तरह बालू की निर्मित भीत, एक मामूली धक्के से धराशायी हो जाती है, उसी तरह कान्ता के हृदय में क्रमशः विकल के प्रति बनती हुई आकाश-छूती भावना क्षण-मात्र में ढह गई। अनूप के चले जाने पर वह बड़ी देर तक दुर्दनीय विचारों में ऊभ-चूभ- होती रही।

उफ् ! विकल चोर है ?—जो साहित्य की सेवा निःस्वार्थ भाव से करता है, वह क्या चोरी से ही अपना पेट भरता है ? जिसके मुंह पर असीम सौजन्य विराजमान है, उसका हृदय क्या कलुषता का आगार है ! जो अपनी लेखनी द्वारा मानवता की क्रिया-शीलता का प्रचार करता है, वह मानवी नेत्रों में धूल झोंक क्या इतना जघन्य काम कर सकता है ? साहित्य द्वारा मनुष्यों के हलाहल-भरे हृदयों में सुधा-रस देने वाला 'व्यथित' क्या विलासता एवं धन पर लोलुप-दृष्टि रखने वाला विकल है ? क्या निकृष्ट कर्मों के मध्य से ही देवत्व का जनक है ?

कान्ता का हृदय डूबा जा रहा था। पहले जिस विकल के चेहरे के ध्यानमात्र से उसका हृदय मधुर टीस से कसक उठता था, आज उसी चेहरे का ध्यान आने पर उसे डर लगने लगा। उफ् !

विकल चोर है—'चोर' कितना निकृष्ट शब्द है ?

उधर विकल विशाल जनपथ से जाता हुआ सोच रहा था उफ् ! अनूप ! अनूप यहाँ कैसे पहुँच गया ? क्या कान्ता का उससे घनिष्ट सम्पर्क है ? जरूर है, तभी तो उसके आने की बात सुन कर वह कितनी उतावली से उसके स्वागत के लिए दौड़ पड़ी थी और जब वापस आई तो कितनी निकटता से उसका हाथ पकड़े हुए थी।

विकल का सर चकरा गया, परन्तु वह सोंचता हुआ चलता ही रहा—क्या प्रेम का अन्तिम परिणाम विश्वासघात है ? परन्तु कान्ता ने तो कोई विश्वासघात नहीं किया। क्या अनूप से निकट सम्बन्ध रखना विश्वासघात है?....वह अनूप का हाथ पकड़े हुए मेरे सामने क्यों आई थी ?—इसलिए कि मैं देखूँ और ईर्ष्या करूँ ? परन्तु मैं ईर्ष्या क्यों करने लगा ?... थोड़े दिनों की इस घनिष्ठता को मुझे विस्मृत करना ही होगा।

विचारों में वह इतना तल्लीन था कि सामने आती हुई सायकिल को न देख सका और प्रबल वेग से जा टकराया। सर में चोट आ गई....रक्त-स्राव होने लगा।



१३

"यह सब कैसे हो सकेगा, हुजूर ?...." पण्डित ने पूछा।

"सब कुछ हो जायगा—तुम देखते चलो...." रसना ने कहा—"अब तुम जाओ देखो अनूप आ रहा है...."

पण्डित चला गया। अनूप रसना के सुसज्जित कमरे में प्रवेश किया। उसके चेहरे पर इस समय उत्सुकता विराजमान थी—"मैं देखता हूँ कि कान्ता का घर घटनाओं का केन्द्र हो रहा है" आते ही उसने कहना शुरू कर दिया।

"आज भी कोई घटना घटी है क्या ?"—रसना ने पूछा।

"क्यों नहीं ?—तभी तो कह रहा हूँ"—अनूप ने ठठाकर हँसने का नाट्य किया—"आज थोड़ी देर पहले मैं कान्ता से मिलने गया था। वहीं अकस्मात् विकल से भेंट हो गई...."

"विकल से ?...." आश्चर्य से रसना विचलित हो उठी।

"हाँ विकल से ?....तुम तो कहती थी कि वह रिक्शा खींचता है, मगर आज तो वह बड़े ठाट-बाट से था—मै सोचता हूँ कि कहीं मेरी कान्ता पर 'डोरे' न डाल बैठे—"

"घबड़ाओ नहीं—मैं विकल को तुम्हारे रास्ते से दूर कर दूँगी...."

"कैसे दूर कर देंगी आप....? देखिए नई अम्माँ ! उसे कोई शारीरिक कष्ट न हो, वह तो घर से भागकर मारा-मारा फिर रहा है बेचारा..." अनूप ने कहा "मैं कल प्रातःकाल उससे अवश्य भेंट करूँगा और उसे वसीयतनामे की तथा वारण्ट रद्द हो जाने की सारी बातें बता दूँगा। वारण्ट रद्द होने की खबर उसे शायद मालूम नहीं है, तभी तो वह मुझे देखते ही भाग खड़ा हुआ....कितना अभागा है, कितना असहाय है वह !...."

"क्या तुम्हें उसके निवास-स्थान का पता मालूम है ?"

"हाँ, मालूम है...." अनूप ने सरलता से विकल के रहने का पता बता दिया।

"देखो अनूप !...." रसना बोली—"अभी तुम विकल से भेंट करने का प्रयत्न कुछ दिनों तक न करना, नहीं तो कान्ता से हाथ धो बैठोगे साथ ही सारी सम्पत्ति भी तुम्हारे हाथ से निकल जायगी...."

"तब क्या करूँ ? मेरी तो अक्ल काम नहीं करती।"

"तुम इस पचड़े में मत पड़ो, अपनी पढ़ाई पर ध्यान दो ! सारा काम मैं देख लूँगी ! तुम बेफिक्र रहो—" रसना ने कहा।

"बहुत अच्छा—" वह नादान युवक राजी हो गया।

उसी दिन—अनूप के चले जाने पर रसना ने पण्डित को बुलाया। बोली—"देखो, विकल के रहने का पता लग गया है! आज रात को तैयार रहना। अगर प्रयत्न सफल हो गया तो बस, चाँदी-ही-चाँदी है तुम आज दिन में ही वहाँ जाकर आगामी कार्य-वाही के लिए जाँच-पड़ताल कर आओ...."

"जो आज्ञा हुजूर...." पण्डित बोला।

० ० ०

"क्या हुआ?...." विकल के कमरे से गम्भीर मुद्रा धारण किये हुए अफजल को निकलते देखकर गुलाब ने पूछा।

"उसके सर में चोट लग गई है! रास्ते में किसी साइकिल से टकरा गया था। खुदा कसम! आँख मूँद कर रास्ता चलता है यह छोकरा—" अफजल बोला—"मैं शहर जा रहा हूँ मलहम लेने। घण्टे भर में लौट आऊँगा। तब तक तुम उसके कमरे में जाकर उसका दिल बहलाओ... अब रूठना छोड़ दो!...."

"...." गुलाब कुछ न बोली। इस समय उसका हृदय भीषण संघर्ष का कीड़ा-क्षेत्र बना हुआ था। उसके हृदय में 'मान' तथा 'प्रेम' का दारुण संघर्ष मचा हुआ था। ऐसी हालत में भी यदि वह विकल के पास न गई तो, तुफ है?

अफजल बाजार की ओर चला गया। गुलाब अपने कमरे के दरवाजे पर कष्टकर विचारों में तल्लीन बहुत देर तक खड़ी रही। अन्त में ममता की विजय हुई। विकल की ममता उसे कमरे की ओर खींच ले गई।

विकल के सर में काफी चोट आ गई थी। वह कमरे में चारपाई पर सुन्न पड़ा था। उसका चित्त स्थिर न था। वह अनेक दुश्चिन्ताओं से विदग्ध हो रहा था। उसे यह विश्वास हो गया था कि कान्ता अनूप से प्रेम करती है। यद्यपि वह बहुत चाहता था कि उसके हृदय में ईर्ष्या का उदय न हो—मगर ईर्ष्या थी, कि उसे आक्रान्त कर विचलित कर देती।

उसके नेत्रों के समक्ष गुलाब की मधुर प्रतिमा नृत्य करने लगी।

वह गुलाब के विषय में ही सोचते-सोचते आत्मविस्मृत-सा हो उठा—उफ्! अगर उसकी भाभी उसके पास होती? मगर उसकी भाभी तो रूठ कर दूसरे ही संसार में जा बसी है। सोचते-सोचते व्याकुल हो उठा वह। बेचैनी से आह कर उठा।

परन्तु इस बेचैनी की एक परम शीतल औषधि उसे मिल गई। उसी समय उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानो उसके सर पर किसी देवी का कल्याणमय हाथ आ पड़ा हो। उस शीतल हाथ का अपने मस्तक पर स्पर्श होते ही विकल चौंक पड़ा। उसने अपने हाथ से वह हाथ पकड़ लिया। देखा—सिरहाने उसकी भाभी, उसपर झुकी हुई है।

"भाभी!....मेरी प्यारी भाभी! तुम...." वह अस्त-व्यस्त-सा बोल उठा। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, महीनों की रूठी भाभी जो आज उसके पास आई थी।

"कैसे चोट लगी, विकल!" गुलाब की आँखों में आँसू आ गये थे, विकल का सूखा चेहरा देखकर। विकल ने गुलाब का हाथ खींचकर चारपाई पर बैठा लिया।

"भाभी क्या सचमुच तुम्हारा क्रोध दूर हो गया?"

"......."

"तुम रूठ क्यों गई थी, भाभी?—"

"चुप रहो, खुदा के लिए चुप रहो, विकल!" गुलाब ने विकल का हाथ जोरों से दबा दिया।

"मुझे बताओ, भाभी! तुम रूठी क्यों थी?—"

"मेरे रूठने का राज तुम समझ सकोगे?" गुलाब ने रसीली आँखों से विकल की ओर देखा—"समझदार होकर भी कोई न समझे तो फिर कैसे समझाऊँ उसे?"

"........"

"तुम्हें चोट कैसे लगी?"

"अच्छा हुआ कि लग गई—नहीं तो मेरी रूठी भाभी मेरे पास कैसे आती !"

विकल के मुँह पर सरल मुस्कुराहट खेल उठी और गुलाब के हृदय की गति तीव्र हो गई, उस मधुर मुस्कान को देखकर। विकल से इतनी दूर रहकर जिस आग को उसने शान्त करने की कोशिश की थी, वह आग और भी प्रदीप्त हो उठी। मनुष्य की सबलता ही निर्बलता की द्योतक है।

'ऐसा क्यों कहते हो विकल ?....तुमसे रूठी कब थी मैं ?...."

"सच कहती हो तुम, भाभी ?...."

"और नहीं तो क्या !...."

"तब बोलती क्यों नहीं थी ?"

"तुम जो नहीं बोलते थे।" गुलाब ने अपना हाथ विकल की छाती पर रख दिया।

"मैं तुम्हारी पहेलियाँ नहीं समझ पाता, भाभी....!"

"तुम्हें समझना भी नहीं आता !" गुलाब ने कहा। इस समय उसके हृदय में तीव्र स्पन्दन हो रहा था ! उसके नेत्रों में मदिरा लहरा उठी थी। उसकी आँखें विकल के चेहरे पर स्थिर थीं।

विकल भी आत्मविभोर था। उसे इस बात का परम सन्तोष था कि उसकी भाभी आज सदय होकर, उसके पास उससे एकदम सटकर बैठी है। आज के पहले सैकड़ों बार विकल रोया है, केवल भाभी के रूठने का ध्यान कर। आज वह खुश है, चाहता है भाभी के चरणों को आँसुओं से धो डालना....परन्तु....?

"विकल !...." गुलाब झुककर बोली। उसका मुँह विकल के मुँह के बहुत निकट पहुँच गया था—"मुझे बताओ, तुम मेरे दिल के अन्दर की पीड़ा को कैसे और किस तरह समझ सकोगे ?

"क्या कोई ऐसा भी शख्स दुनिया में होगा, जो अपने ही घर में आग लगाकर अपनी आँखें बन्द कर ले ?—"

"नहीं !..."

"मगर तुम तो ऐसे ही हो ?...." एका-एक गुलाब की मादक श्वांस विकल के होठों से जा टकराई।

"मैं – मैं ऐसा हूँ....यह तुम क्या कहती हो, भाभी ?...."

"देखो ? ..." गुलाब ने विकल का हाथ पकड़कर अपने वक्ष से दबा लिया – "यह कलेजा तुम्हारा घर है। तुमने इसमें आग लगा दी है, अब हँस रहे हो। अपना घर फूँककर तमाशा देख रहे हो तुम...."

"......." विकल कुछ न बोला। आँखें बन्द कर वह उसकी पर विचार करने लगा।

"बोलो विकल !"....गुलाब को वासना ने आक्रान्त कर लिया —"तुम न बोलोगे, न बोलोगे ! आवेश में आकर गुलाब ने विकल ो अपनी फूल-सी बाहों में जकड़ लिया। दोनों के अधरोष्ठ बड़ी तक एक दूसरे का आलिंगन करते रहे।

"भाभी !..." एकाएक विकल के ज्ञानतन्तु लौट आये, उसने पूर्वक गुलाब को अपने से अलग करते हुए कहा —"सम्हालो अपने को भाभी !..."

● ● ●

उसी दिन आधी रात के समय अफजल को जगाकर गुलाब ने — 'सुनो तो यह फुसफुसाहट की आवाज कैसी है ?"

अफजल ने कान लगाकर सुना, फिर बहुत सावधानी से अपने रे का दरवाजा खोलकर बाहर झाँका ! देखा —विकल के कमरे दरवाजे पर एक औरत एक मर्द खड़े हुए कुछ फुसफुसा रहे हैं।

अफजल तुरन्त समझ गया कि कोई खतरनाक बात या तो रही है या बहुत शीघ्र होने वाली है।

उसने आहिस्ते से अपना दरवाजा पुनः बन्द कर लिया। गुलाब पूछा—"क्या है ?"–मगर अफजल ने होठों पर गली रखकर उसे रहने का संकेत किया।

अफजल और विकल के कमरों के बीच की दीवार में एक दरवाजा था, जिससे अन्दर-ही-अन्दर एक दूसरे में आया-जाया जा सकता था। अफजल ने धीरे से दरवाजा खोला और गुलाब को चुपचाप चारपाई पर पड़े रहने का संकेत कर, वह विकल की कोठरी में चला गया।

विकल इस समय घोर निद्रा में सो रहा था।

किसी के हाथ का स्पर्श मालूम कर वह जाग पड़ा। कमरे में घोर अन्धकार था, फिर भी उस स्पर्श मात्र से ही वह अफजल को पहचान गया। अफजल ने उसका हाथ पकड़कर चारपाई से उठाया और उसी दरवाजे की राह अपने कमरे में चले जाने का संकेत किया। विकल हैरान था, परन्तु कुछ बोला नहीं।

विकल के चले जाने के बाद अफजल चुपचाप दीवाल से सटकर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद दरवाजे पर खटका होने का शब्द सुन कर वह समझ गया कि बाहर से कोई व्यक्ति दरवाजा खोलने को कोशिश कर रहा है। बाहर वाला व्यक्ति चाहे जो कोई रहा हो, परन्तु वह अपने प्रयत्न में सफल हो गया। दरवाजा धीरे-धीरे बिना कोई आवाज किये खुल गया। अफजल ने देखा कि कोई कद्दावर आदमी उस दरवाजे से भीतर घुसकर विकल की चारपाई की ओर बढ़ रहा है। उसके हाथ का चमकता छूरा अन्धेरे में भी अफजल की आँखों के आगे चमक उठा।

अफजल आगे बढ़ा। बिजली जैसी तेजी से उसने एक हाथ से उस आततायी का छूरा वाला हाथ पकड़ लिया और दूसरे से उसका मुँह! दो क्षण बाद वह आततायी भूमि पर बेहोश पड़ा था। अफजल की असाधारण शक्ति ने उस कद्दावर व्यक्ति को परास्त कर दिया था। सारा कार्य चुपचाप हो गया।

विकल पर यह अचानक आक्रमण की योजना बनाने वाली रसना थी। वह पण्डित को साथ लेकर स्वयं विकल के दरवाजे तक आई थी। पण्डित को विकल के कमरे में भेजकर, आप दरवाजे पर खड़ी हुई उसके बाहर आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

भीतर जो काण्ड हो चुका था, उसकी उसे तनिक भी खबर न थी।

दरवाजे के धूमिल प्रकाश में, किसी बाहर आने वाले की स्वष्ट आकृति रसना ने देखी, परन्तु दूसरे ही क्षण चीख पड़ी क्योंकि बाहर आने वाला पण्डित न था। वह था क्रूर एवं दुर्दान्त अफजल! रात्रि के समान काला एवं दानव-सा बलवान अफजल!

"आप ?...." अफजल ने रसना को देखकर चौंकने का अभिनय किया, मानों रसना को उस स्थान पर वह अभी-अभी देख रहा हो—"हुजूर आप ?... तो क्या यह आपकी ही कारस्तानी है ?...."

अफजल पुनः कोठरी में घुसा और एक क्षण बाद पण्डित का बेहोश शरीर कन्धे पर लादे हुए निकला। रसना काँप उठी। अफजल बोला—"चलिए आपको और आपके इस साथी को आपकी मोटर तक पहुँचा दूँ, वह दूर खड़ी मोटर आपकी ही है न ?..."

रसना उस दुर्दान्त मुसलमान के व्यंग से भयभीत हो उठी। पहले भी दो बार वह अफजल से मात खा चुकी थी। अतः वह चुपचाप घूम पड़ी और कुछ दूर पर अँधेर में खड़ी हुई टैक्सी की ओर बढ़ी। जिस टैक्सी पर वह यहाँ तक आई थी। टैक्सी के पास पहुँचकर अफजल ने बेहोश पण्डित के शरीर को भीतर ढकेल दिया। रसना चुपचाप टैक्सी में बैठने लगी, परन्तु अफजल ने उसका हाथ जोरों से पकड़कर बाहर खींच लिया। उसने रसना की कलाई इतनी जोर से दबा दी कि वह चीख पड़ी। क्रोधित स्वर में वह बोला—"सुनिये हुजूर!"

"क्या है ?" क्या कहना चाहते हो ?" रसना की आवाज काँपने लगी।

"आप बराबर मुझे गुस्सा दिलाती रही हैं...विकल से आपकी कौन-सी दुश्मनी है ? मैं सारी बातें जानता हूँ, हुजूर....अगर आपने फिर कभी ऐसी हरकत की तो हाथ-पैर तोड़ कर रख दूंगा...."

"........"उस भयावने पुरुष की प्रज्वलित आँखें देखकर रसना आपाद-मस्तक काँप उठी।

"आपकी मनीबैग में कुछ रुपये हों, तो मुझे इनाम देते जाइये..." अफजल ने कहा।

रसना ने अपना मनीबैग निकाला और चाहा कि उसे खोलकर कुछ रुपये अफजल को दे दें, परन्तु अफजल ने उसके हाथों से वह मनीबैग छीन लिया और उसमें के कुल रुपये निकाल कर, खाली मनीबैग रसना के आगे फेंक दिया, फिर जाने के लिए घूम पड़ा—"आदाबर्ज है, हुजूर ! अब कभी इधर झाँकने की हिम्मत की तो दोनों का गला घोट दूंगा...."

इस समय उसके हाथों में सैकड़ों रुपये के नोट मुड़े हुए पड़े थे।

१४

कान्ता के हाथ में एक पत्र था, जिसे अभी-अभी अफजल उसे दे गया था। वह पत्र विकल का था। कान्ता उसे नौ बार पढ़ चुकी थी यह दसवीं बार पुनः पढ़ रही थी—

देवि !....

कारणवश आगे से आपकी सेवा में मैं उपस्थित न हो सकूंगा। मुझे अपना पूर्व जीवन हो सुखकर है। आपके सम्पर्क में आकर मैं स्वयं को भूल गया था। उस सम्पर्क की मधुरता को अब याद करता हूं तो वह स्वप्न-सा प्रतीत होता है। वह स्वप्न ही था ! मैं पुनः दीनहीन रिक्शावाला विकल बन गया हूं। मुझे क्षमा करेंगी। मैं पतित हूं, नीच हूं ; दुनियाँ मुझे चोर कहती है। आप क्षमा करेंगी, मुझे अकेला जानकर। आपको शपथ है—

यदि मेरे लिए आपके हृदय में तनिक भी सहानुभूति हो तो, अब भविष्य में मुझसे भेंट करने की चेष्टा न कीजियेगा।

—विकल

इस बार पत्र पढ़ चुकने पर कान्ता के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। 'व्यथित' के लिये उसके हृदय में सर्वोच्च स्थान था। परन्तु चोर विकल से वह घृणा करने लगी थी...परन्तु हत-भाग्य! 'व्यथित' और विकल दोनों एक थे। वह क्या करे, क्या न करे!

दिन के बाद रात और रात के बाद दिन क्रमशः गुजरते गये। कान्ता से विकल की मुलाकात न हुई। उसका हृदय 'व्यथित' और विकल तथा 'विकल' और 'व्यथित' की गुत्थी सुलझाने में व्यस्त रहता था। उसे अपनी पढ़ाई की सुध न थी। उसे किसी की भी सुध न थी।

कभी-कभी अनूप के आने पर कान्ता की तबियत बहल जाती थी।

मनुष्य एक ओर से निराश होकर, सन्तप्त हृदय को दूसरी ओर लगाना चाहता है। कान्ता भी अनूप से अब अधिक सम्पर्क बढ़ाने लगी थी। जब वह आता तो उसके साथ टहलने जाती, सिनेमा देखने जाती। आत्म-विभोर हो रहा था अनूप! जिस कार्य को कान्ता केवल दिल बहलाने का साधन समझती थी, उसी कार्य का तात्पर्य अनूप कुछ दूसरा समझ रहा था। वह सोचने लगा था कि कान्ता की उसके प्रति सहानुभूति, अब प्रेम में परिवर्तित हो रही है।

विकल!—अभागा और अकेला विकल!—उसकी दशा विचित्र थी! से मनुष्य से घृणा हो चली थी। वह चुपचाप अपने कमरे में पड़ा रहता था। कभी-कभी रिक्शा उठाकर शहर से कुछ पैसे उगाह लाता था। उसने अपने सफेद कपड़े आवेश में आकर फाड़ डाले थे। कई बार पत्थर पर सर पटक दिया था। कई बार पागलों की तरह

नदी किनारे दौड़ रहा था। अफजल और गुलाब हैरान थे। कोई भी उपाय विकल की मानसिक अशान्ति को दूर न कर सका।

यद्यपि विकल के सर का घाव अच्छा हो चला था, परन्तु मानसिक विह्वलता, खाने-पीने और सोने में अतिशय व्यतिक्रम वर्षा के दिनों में भींगते हुए रिक्शा खींचने के कारण, उसका निर्बल शरीर अत्यन्त शिथिल पड़ गया था। उसके शरीर में बुखार बना रहता था। कभी-कभी खाँसी का वेग बढ़ जाया करता था। फिर भी उसे, जैसे कुछ परवाह न था।

विकल की दयनीय अवस्था देखकर अफजल परेशान था, गुलाब रो-रोकर दिन काट रही थी—फिर भी विकल उनसे अधिक न बोलता था। गुलाब के हाथ जोड़कर पूछने पर भी उसने अपने दर्द का राज नहीं बताया था। कई बार गुलाब ने पूछा था—"विकल! अगर अपना ख्याल न करो तो, मेरा ख्याल कर अपना राजे-दर्द मुझे बता दो...." विकल फिर भी चुप रहता—अपने साथ वह गुलाब की भी सुख-शान्ति ले बैठा था।

महीनों बीत चले हैं! अब रिक्शा खींचते-खींचते विकल को खाँसी आ जाती है। मुँह से कभी-कभी खून गिरने लगता है, कभी-कभी बेहोश होकर गिर पड़ता है। उसे क्षय हो गया है, परन्तु उसे परवाह ही नहीं....वह अकेला करता भी क्या!

एक दिन थक कर, बेदम होकर वह सड़क पर गिर पड़ा। बड़ी कोशिश करके जब वह उठा तो उसने अपने सामने पुलिसरूपी यमदूत को उपस्थित पाया।

"क्यों बे साले?...." पुलिसमैन गरज पड़ा—"ठीक से नहीं चलता...."

"क्या करूँ, हुजूर!...." रिक्शावाला बोला—"कमजोरी से सम्भल न सका, गिर पड़ा...."

"गिर पड़ा ?...क्यों गिर पड़ा बे ?....सड़क तेरे बाप की है, जो गिरता पड़ता चलता है...." पुलिसमैन ने दो डण्डे पीठ पर रख दिये। विकल हाय मारकर गिर पड़ा। उसकी केहुनी से रक्त फूट पड़ा।

कान्ता पास ही से जा रही थी। रिक्शेवाले पर निगाह पड़ते ही वह ठगी-सी रह गयी। उफ् ! यह तो विकल है....वही उसका चिर-परचित रिक्शावाला, विकल ! परन्तु इसकी यह क्या दशा है ? चेहरा सूखा हुआ, आँखें गढ़े में धसी हुई, हड्डी-पसलियाँ हाहाकार करती हुईं—उफ् ! यह विकल है या उसका अस्थिपंजर।

एक क्षण के लिए विकल और कान्ता के नेत्र परस्पर टकरा गये, परन्तु तुरन्त ही विकल ने अपनी दृष्टि नीची कर ली। कान्ता ने पुलिसमैन को बुलाकर उसके हाथ पर दो रुपये रख दिये और बोली—"उस रिक्शेवाले को जाने दो—"

"बहुत अच्छा !...." पुलिसमैन ने नम्रतापूर्वक कहा। चार अंगुल का लाल कपड़ा सर पर रखे हुए ये पुलिसमैन अपने को लाट साहब से कम नहीं समझते। उस रिक्शेवाले के पास जाकर वह गरज कर बोला—'जा बे ! उन मिस साहिबा की सिफारिश से छोड़ दे रहा हूँ—वर्ना मारे डण्डों के ..."

विकल ने रिक्शा उठाया और सामने की ओर जाने लगा, उसकी आँखों में आंसू थे, विषाद न था। आँखें सूखी थीं—मगर करुणा से वे शुष्क रुदन कर रही थीं।

कान्ता सिपाही को दो रुपये देकर रुकी नहीं। वह आगे बढ़ गई थी। कुछ ही दूर जाकर विकल ने उसे रोक लिया और धीरे से बोला—"आपने मुझे क्यों छुड़ाया....?"

"मेरी मर्जी...." कान्ता पुन: चलने को उद्यत हुई।

"आइये, आपको रिक्शे पर पहुँचा दूँ...." विकल ने अनुरोध किया।

निःशब्द कान्ता रिक्शे की ओर बढ़ी। न जाने किस दैवी प्रेरणा से वह रिक्शे पर बैठ गई। उसके दोनों नेत्रों से कई बूँद आँसू टपक कर रिक्शे की मखमली गद्दी पर गिर पड़े। आज कान्ता को विकल के रिक्शे पर चढ़ने पर रोना आ रहा था।

विकल रिक्शा लेकर धीरे-धीरे चलने लगा। मार्ग में दोनों चुप रहे। दोनों के हृदय में दारुन संघर्ष हो रहा था। असह्य वेदना मनुष्य की वाणी का हरण कर लेती है और कर देती है आसुओं की वृद्धि !

अपने घर के पास पहुँचकर कान्ता उतर पड़ी थी। कान्ता ने पाँच रुपये का एक नोट विकल की ओर बढ़ाया, परन्तु विकल ने मूक भाव से सर हिलाकर लेने से इन्कार कर दिया। उसने अपनी फटी हुई कमीज की जेब से एक मुड़ा हुआ कागज निकालकर कान्ता के हाथ में ठूँस दिया—"इसे अन्दर जाकर देखियेगा।"

विकल रिक्शा लेकर चला गया। कान्ता उसे तब तक देखती रही, जब तक कि दीर्घाकार अट्टालिकाओं की ओट में जाकर वह विलीन न हो गया। कान्ता ने मुट्ठी से वह कागज निकाला, जिसे विकल ने जाते समय उसे दिया था और जिसे वह कोई पत्र समझ रही थी परन्तु उस कागज पर दृष्टि पड़ते ही वह आवाक् रह गई। उसके मुँह से दर्दभरी एक आवाज निकल गई वह पत्र नहीं था, था सौ रुपये का नोट। वही नोट, जिसे कान्ता ने विकल को प्रथम मास के वेतन के रूप में दिया था। एक पुर्जा था, जिसमें केवल इतना ही लिखा था....

गरीब स्नेह और सहानुभूति का अभिलाषी है, रुपयों का नहीं।

● ● ●

उस दिन, रात भर कान्ता विकल की ही चिन्ता में लीन रही। सन्ध्या को अनूप ने आकर उससे सिनेमा चलने का अनु-

रोध किया, तो वह बड़ी मुश्किल से तैयार हुई। उस दिन कोई अच्छा खेल नहीं था। भीड़ बहुत कम थी। कान्ता और अनूप अन्दर जाकर बॉक्स में बैठ गये।

खेल शुरू हुआ, परन्तु कान्ता का मन खेल देखने में नहीं लग रहा था। वह विकल के विषय में सोच रही थी। वह विचारों में इतनी निमग्न थी कि परदे पर दौड़ती तस्वीर भी उसे अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी!

सहसा वह चौंक पड़ी। किसी का हाथ उसके कन्धे पर आ पड़ा था। उसने गर्दन घुमा कर देखा। अनूप का हाथ उसके कन्धे पर पड़ा हुआ कुछ काँप रहा था? अनूप ने बहुत धीरे से कहा—"एक बात मैं बहुत दिनों से बताना चाह रहा हूँ..."

"कौन-सी बात?...." उसने आश्चर्य से पूछा और धीरे से कन्धे से हाथ हटा दिया! विवश अनूप को कान्ता की ओर झुकना पड़ा। उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर वह बोला—"मैं आपको चाहता हूँ कान्ता देवी!...."

"चुप रहिये! चुप रहिये, मिस्टर अनूप कुमार!........" कान्ता हाँफती हुई बोली—"मेरी कमजोरी से बेजा फायदा उठाने की कोशिश न कीजिये—मेरा हृदय अपने आप में नहीं है, वह है विकल के पास। आप मुझे असमर्थ जानकर क्षमा करें...."

अनूप जैसे आसमान से गिरा। उफ्! कान्ता विकल को चाहती है? तो क्या उसका अब तक की सहानुभूति-प्रदर्शन केवल अभिनय मात्र था, दिल-बहलाव था?....

कितना भयानक था यह अभिनय?

१५

हनीमून होटल के एक सुसज्जित कमरे में बड़ी देर से रसना और पण्डित बात कर रहे हैं। कमरे का दरवाजा बन्द है—मगर दरवाजे के बाहर ही एक युवक सावधानी से खड़ा हुआ दरवाजे से कान लगाकर अन्दर की बातें सुनने का प्रयत्न कर रहा है। वह युवक अनूप है।

भीतर रसना और पण्डित बेफिक्री से बातें कर रहे हैं। दोनों को इस बात की तनिक भी आशंका नहीं थी कि कोई व्यक्ति बाहर खड़ा हुआ उनकी बातें सुन रहा है। वे आज अपने कुकर्मों की पुस्तक का पन्ना उलटने में तल्लीन है....आज तक उन दोनों ने मिलकर जितने दुष्कर्म किये हैं, उन सबको वे आलोचना प्रत्यालोचन कर रहे हैं।

पण्डित की बात खतम हो जाने पर रसना ने कहा—"हाँ-हाँ, यह सब तो होगा ही...." रसना ने एक लिफाफा पण्डित के हाथों पर रख दिया—"यह लिफाफा आलमारी में रख देना, सुखदा के सभी पत्र आदि इसी में हैं..."

पण्डित ने वह लिफाफा लेकर जेब में रख लिया।

उसी समय किसी ने बन्द दरवाजे पर बाहर से थपकी दी। रसना आवाज सुनकर चुप हो गई, मगर फिर कुछ देर तक आहट न मिलने पर, पुनः पण्डित से बातें करने लगी—"कुछ गुण्डों को ठीक कर रखो और उन्हें आज दिन में विकल का घर भी दिखला आओ, ताकि वे कल रात में वहाँ जाकर उसका काम तमाम कर दें—अफजल को भी खत्म कर दें। हमारा वहाँ जाना ठीक नहीं...."

रसना पुनः रुक गई, क्योंकि दरवाजे पर पुनः थपकी की आवाज सुनाई पड़ी! रसना ने पण्डित से कहा—"दरवाजा खोलकर देखो कौन है?...."

पण्डित ने आगे बढ़कर दरवाजा खोला और चौंक कर कई पग पीछे हट गया। दरवाजे पर अनूप खड़ा था। उसका चेहरा अत्यधिक गम्भीर था और आँखों में क्रोध की लाली थी।

"नई अम्माँ!..." अनूप की आवाज से आज कर्कशता टपक रही थी।

"क्या है अनूप?....है क्या?...." रसना आशंका से भयभीत हो उठी थी।

"मैंने सब सुन लिया है नई अम्माँ!"

"क्या सुन लिया?" कहती हुई काँप उठी रसना।

"यही कि तुम विकल के प्राणों की भूखी हो...."

"चुप ! चुप...." रसना चीख उठी।

"अब तुम्हारे मुख पर की कालिमा, तुम्हारे हृदय की कलुषता छिपाये नहीं छिप सकती—सब तुम्हारी काली करतूतें शीघ्र ही प्रकट हो जायँगी...."

"...." रसना ने पण्डित को कुछ इशारा किया। पण्डित ने आगे बढ़कर अनूप का गला धर दबाया। अनूप बहुत छटपटाया, परन्तु पण्डित उससे बहुत बलवान था। रसना ने कहा—"ले जाओ इसे, उस कोठरी में बन्द कर दो और बाहर से ताला लगा दो। कल सब काम निबटा कर इससे समझूँगी अगर न मानेगा तो...."

अनूप को घसीटते हुए पण्डित कमरे से बाहर निकल गया अनूप 'हनीमून होटल' की एक गुप्त कोठरी में कैद कर दिया गया। सुखदा के गुप्त भेद वाला वह फिफाफा, गर्व से असावधान पण्डित की जेब से अकस्मात् निकल कर गिर पड़ा। अनूप ने उसकी आँख बचाकर उठा लिया।

• ० ०

दूसरे दिन शाम को एकाएक विकल की तबीयत ज्यादा खराब हो गयी। उसे जोर का बुखार चढ़ आया। खाँसी का वेग तीव्रतर हो गया। सिर में भयानक पीड़ा होने लगी। अफजल घबड़ा गया। गुलाब रो पड़ी। दोनों बदहवास होकर, खाना-पीना छोड़कर विकल के पास बैठे रहे।

"या खुदा !....क्या होगा ?"—दीर्घाकार अफजल पत्ते-सा काँप रहा था। गुलाब कम्पित हाथों से विकल का सर दबा रही थी। बाहर जोरों से सनसनाती हवा चल रही थी।

"अफजल भाई ?" विकल ने शिथिल-स्वर में पुकारा। अफजल ने प्रेम से विकल के सर पर हाथ रखा।

"क्या है विकल ?..." उसने पूछा।

"मैंने उसके साथ अन्याय किया है, अफजल भाई !"

"किसके साथ ?...."

"उसी के साथ—कान्ता के साथ !...." बिकल कराहते हुए बोला—"वही व्यवहार आज मेरे शरीर को, मेरे तन-मन को भष्म कर रही है, वही व्यथा मुझे कष्ट दे रही है....उसका दिल दुखाया है मैंने, अफजल भाई ! उसकी सजा भुगत रहा हूँ....दिल कितनी मुलायम चीज है, जानते हो ?...." विकल का खाँसी आ गई।

"जानताहूँ....खुदाकसम जानता हूँ, विकल !....मगर तुम चुप रहो....बोलोगे तो तबीयत ज्यादा खराब हो जायगी—" अफजल के नेत्र भी सजल हो उठे थे।

"एक बात मानोगे, अफजल भाई ?"

"कहो-कहो !....अगर आसमान के तारे भी चाहोगे तो जान की परवाह न कर, ला दूँगा !"

"तुम उसके पास चले जाओ...." विकल बोला—"उससे कह देना कि मुझे माफ कर दे....उससे कह देना कि मुझे भूल जाय....उससे कह देना कि सारी बातें स्वप्न थीं....आयीं और चली गयीं !"

"हाय ! हाय !..." रो पड़ी जोरों से गुलाब।

"अच्छा चला जाऊँगा !...." अफजल ने कहा।

"अभी जाओ, अफजल भाई !....अभी !" विकल बोला।

"अभी !....इस वक्त रात के नौ बज रहे हैं...."

"चले जाओ, अफजल ! मरने के पहले उससे माफी माँग लेना चाहता हूँ...." विकल के नेत्रों से गर्म आँसू बह चले।

"ऐसा न कहो—खुदा के लिए ऐसा न कहो, विकल !—" गुलाब ने विकल के मुंह पर हाथ रख दिया ! फिर अफजल से बोली—"चले जाओ न ! न जाने रात में क्या हो जाय ?"

अफजल उठा। उसके नेत्र आँसुओं के वेग से फट पड़ना चाहते थे। विकल को वह अपने लड़के-सा चाहता था। वह

गुलाब से बोला—"जाता हूं....देखना, रात का वक्त है। होशियार रहना। विकल को अकेला न छोड़ना...."

अफजल चला गया। गुलाब विकल के सर को गोद में लिए बैठी रही। बहुत देर बीती। कोई कुछ न बोला। एकाएक विकल ने पुकारा—"भाभी !...."

"कहो, क्या कहना चाहते हो ?" गुलाब के कण्ठ से रुकती आवाज निकली।

"तुम भी मुझे माफ कर देना भाभी..."

"चुप रहो विकल !....मेरे विकल !...."

"मैंने तुम्हारे साथ खिलवाड़ किया था, भाभी ?"

"मेरे साथ नहीं, मेरे दिल के साथ खिलवाड़ किया था, तुमने...." गुलाब बोली—"फिक्र न करो— औरत का दिल खुदा इसीलिए बनाया है...."

"यह तुम क्या कर रही हो भाभी ? ऐसा न कहो !"

"न कहूं ? क्यों न कहूँ, विकल ?....तुमने मुझे बरबाद करके गैर से दिल लगाया...." गुलाब रोते रोते विकल के वक्ष पर गिर पड़ी..."अपनी हालत देखो—न जाने क्या हो गया है तुम्हें ? तुम चले जाओगे तो मैं इस दुनिया में टूटा हुआ दिल लेकर अकेली जिन्दा नहीं रहूँगी..."

"मैं तो अकेला ही हूँ, भाभी !"

"अकेले हो ! सितमगर ! अपने साथ मेरा भी दिल बांधकर कहते हो अकेला हूँ ? बोलो ?...." गुलाब के हाथ धीरे-धीरे विकल की ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण दो जान दो शरीर मिलकर एक जान, एक शरीर हो गये।

"मुझे छोड़ दो, भाभी !"

"नहीं छोड़ूंगी—नहीं छोड़ूंगी जालिम ! मुझे अपने साथ ले चलो...." गुलाब रोते-रोते विकल के शरीर से लता-सी लिपट गई। विकल निश्चेष्ट होकर दीर्घ साँसें लेने लगा। वह गुलाब के दर्देजिगर का हाल जान गया। गुलाब का दर्द और उसका

दर्द एक है। दो दर्द वाले प्राणी आपस में आबद्ध होकर अपना दर्द रफ़ा कर रहे थे।

o o o

रात के साढ़े नौ बज रहे थे। सेठ राकेशरमण ने कोट पहनकर, हाथ में पतली छड़ी ली और कहीं जाने को उद्यत हुए। कान्ता के कमरे में आकर बोले ..."देखो बेटी! मै एक जरूरी काम से बाहर जा रहा हूँ। अगर देर हो जाय तो घबड़ाना मत...."

कान्ता अपने ही विचारों में तल्लीन थी! उसने केवल 'अच्छा' कह दिया। सेठजी चले गये। कान्ता की आँखें आज गोली हो रही थीं। उसे न जाने क्यों विकल की याद सता रही थी। रह-रह कर मन में आता था कि विकल के पास जाकर अपनी उद्दण्डता के लिए माफी माँग ले।

"हजूर!....एक खौफनाक आदमी आपसे मिलना चाहता है...." — नौकर ने आकर कहा।

"क्या नाम बताया है उसने?"

"अफजल"

"अफजल!....वह इतनी रात गये क्यों आया है?" कान्ता उठी और तेजी से दरवाजे तक दौड़ आई। दरवाजे पर अफजल खड़ा था। उसके मुख पर रुदन जैसी गम्भीरता छा रही थी।

"अदाब अर्ज है, हुजूर!" उसने सर्द आवाज में कहा—'विकल ने आपसे माफी माँगी है...."

"..." कान्ता को जैसे काठ मार गया।

"जी हाँ, उसने कोई बहुत बड़ा कुसूर किया था, उसी की मांफी आपसे माँगी है—" अफजल बोला—"उसकी तबीयत महीनों से खराब रहती है—आज..."

"आज क्या?..."

"आज उसकी हालत ज्यादा खतरनाक है, हुजूर!....माफी उसे जरूर दे दें। वह इसके लिए रो-रोकर मर रहा है और मर-मरकर जी रहा है। खुदाकसम!"

कान्ता खड़ी न रह सकी और वहीं बैठ गई। अफजल की बात अधूरी रह गई।

"अफजल !....अफजल ! उन्हें क्या हो गया है अफजल ?...." रुआंसे स्वर में कान्ता ने पूछा।

"दिल को सम्हालिए हुजूर !....वह गरीब अकेला आदमी है, उसे माँफी जरूर दीजिए !"—एकाएक अफजल रुक गया और बगल की जेब से एक बड़ा-सा लिफाफा और एक कागज निकाल कर कान्ता की ओर बढ़ाते हुए बोला—"यह लीजिए हुजूर ! आपके लिये यह चीजें एक बाबू दे गये हैं। मैं जैसे ही आकर खड़ा हुआ और नौकर से भीतर आपके पास खबर भिजवाई, वैसे ही दौड़ते हुए वह बाबू साहब आये और यही दोनों कागज मेरे आगे फेंक, उन्हें आपको देने के लिये कहकर तेजी के साथ उस ओर भाग गये। खुदा कसम हुजूर ! वे कोई बड़े आदमी जैसे लगते थे अभी नौजवान हैं !"

कान्ता ने आश्चर्य के साथ वह लिफाफा और कागज ले लिया। उलट-पलट कर देखने लगी। वह एक सावधानी के साथ बन्द किया हुआ बड़ा-सा लिफाफा था, दूसरा था एक मामूली पुरजा। कान्ता उसी पुरजे को पढ़ने लगी—

देवि !

मैं एक बहुत बड़ी आफत में फंस गया था, परन्तु किसी प्रकार निकल भागा हूँ। इस समय आपसे भेंट नहीं कर सकता, क्योंकि अनुकूल अवसर नहीं है। मैं मिर्जापुर अपने घर जा रहा हूं। आज १० बजे रात के लगभग विकल पर गहरी आफत आने वाली है। उसके पीछे भयंकर गुन्डे लगा दिये गये हैं। यह एक गूढ़ रहस्य है। आप विकल को बचाने की पूरी कोशिश कीजियेगा। साथ वाला बड़ा-सा लिफाफा बिना खोले ही अपने पिता को दे दीजियेगा।

आपका ही—

अनूप

पत्र पढ़कर कान्ता बेतरह घबड़ा उठी। विकल के ऊपर आने वाली विपत्ति का ध्यान करके वह उद्विग्न हो गई। उसने तेजी से दौड़कर वह लिफाफा अपने कमरे में जाकर फेंक दिया और अफजल के साथ विकल के घर की ओर चल पड़ी। रास्ते में उसने एक तेज ताँगा कर लिया।

१६

अगर दूसरा दिन होता तो रात के दस बजे 'हनीमून होटल' आदमियों से ठसाठस भरा रहता। कहीं रेडियो बज रहा होता तो कहीं प्यानों की सुरीली आवाज कर्ण-कुहरों में अमृत-वर्षा करती, होती, परन्तु आज यह सब कुछ भी नहीं था। यद्यपि विद्युत के प्रखर प्रकाश में कोई कमी नहीं थी, फिर भी वहाँ एक भी व्यक्ति दृष्टि-गोचर नही हो रहा था। चारो ओर सुनसान सन्नाटा था! इस समय उसकी निस्तब्धता देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह एक विशाल एवं सुप्रसिद्ध होटल है। उस निस्तब्धता से एक भयंकरता का आभास मिल रहा था, मानो वहाँ शीघ्र ही कोई भयावह घटना घटने वाली हो।

इस समय रसना और पण्डित एक कान्त कमरे में बैठे थे। वह कमरा यद्यपि काफी सजा हुआ न था, फिर भी भले आदमियों के बैठने लायक नहीं था। उस कमरे में दो दरवाजे थे। एक तो उस कमरे का प्रवेशद्वार था और दूसरा था एक छोटी-सी कोठरी में जाने का दरवाजा। वह दरवाजा जंगलेदार था।

एक बेयरा घबड़ाया हुआ दौड़ा आया और रसना से बोला—"हुजूर! अनूप का पता नहीं है – कोठरी खुली पड़ी है..."

"क्या कहीं....भाग गया वह?" रसना चौंक पड़ी....चारो ओर से विपत्ति ही मड़राती देख उसके होश-हवाश जैसे गुम हो गये....! अपना मस्तक ठोक कर वह बोली—"लो अब हम मिर्जापुर भी नहीं जा सकते। सब ओर से निराश होकर इसी होटल की आमदनी पर गुजर करना पड़ेगा...."

"आप घबड़ाती क्यों हैं, हुजूर?" पण्डित ने कहा—"विकल

के लिए गुण्डों को रवाना कर दिया है। आज उसका अन्त जरूर हो जायगा।"

"अब विकल की मौत से क्या होगा, जब अनूप ही हाथों से जाता रहा।" रसना ने कहा।

"तब फिर क्या किया जाय?"

"अनूप भागकर घर गया होगा और मेरे विरुद्ध जरूर कोई मुकदमा चलायेगा—" रसना बोली—"अतः अब हमारा यहाँ एक क्षण भी रहना ठीक नहीं! जहाँ तक हो सके हमें शीघ्र किसी दूसरे शहर भाग चलना चाहिए।"

"मगर इस होटल का क्या होगा?" पण्डित ने पूछा।

"कल दिन भर में इसे बेचकर शाम की गाड़ी से भाग चलना होगा—"

दूसरे दिन वह आलीशान होटल बेचकर, वे दोनों पापात्मा न जाने किस शहर को चले गये। उन दोनों ने यह भी जानने की कोशिश न की कि गुण्डों ने विकल की जान ली या नहीं!

● ० ०

कान्ता और अफजल देर से पहुँचे। अबतक आततायी अपना कार्य कर चुके थे। गुलाब चारपाई से बंधी चिल्ला रही थी और विकल जमीन पर पड़ा कराह रहा था आततायियों का कहीं पता न था। वे तो अपनी समझ से विकल का काम तमाम करके भाग चुके थे? दैव-कृपा से विकल बच गया, मगर घाव गहरे लगे थे। वह खून से तर-बतर हो रहा था।

"विकल!...." तीव्र आर्तनाद करता हुआ अफजल विकल की ओर लपका। कान्ता ने आगे बढ़कर गुलाब का बन्धन खोला।

विकल के हाथ पर छुरा लगा था। बहुत भयानक घाव हो गया था। वह अर्द्ध चैतन्य अवस्था में पीड़ा से कराह रहा था।

कान्ता घबड़ा उठी, मगर उसने शीघ्र ही अपने को चैतन्य किया और पास के एक प्रसिद्ध डाक्टर को बुला लाई। डाक्टर ने घाव की मरहम पट्टी कर दी। उस समय रात के बारह बज चुके

थे ! विकल को १०५ डिग्री का ज्वर चढ़ा था ।

कान्ता प्रातःकाल घर लौट आई । उसने घर आकर अपने पिताजी को घबराये हुए पाया । करुण स्वर में सारी कहानी वह पिता को सुना गई ।

"अपने एक दोस्त के पत्र से मुझे विकल के ऊपर आनेवाली विपत्ति का पता लगा—" कान्ता ने कहा—"मैं घबड़ाई हुई तुरन्त उसके घर को चल पड़ी । उसका पड़ोसी अफजल उस वक्त मेरे ही पास था—वह बेचारा भी घबड़ा गया । हम लोग तांगे पर वहाँ पहुँचे, पर गुण्डे अपना काम कर चुके थे । खैर यह हुई कि बिकल की जान नहीं गई । मैंने डाक्टर बोस को उनकी सुश्रुषा के लिए तैनात कर दिया है । आशा है कि वह शीघ्र ही अच्छे हो जायेंगे...."

"वह तुम्हारा दोस्त कौन है बेटी, जिसने विकल पर आने वाली विपत्ति की सूचना तुम्हें दी ?" सेठ राकेशरमण ने पूछा ।

"आप उन्हें नहीं जानते पिताजी...." कान्ता बोली—" उनसे आपका अभी तक परिचय नहीं हुआ है—उन्होंने ही आपके लिए एक बन्द लिफाफा भेजा है । वह अभी ज्यों-का-त्यों रखा हुआ है—देखिये मैं उसे अभी लाती हूं...." कान्ता ने अपने कमरे से अनूप का भेजा हुआ वह बड़ा-सा लिफाफा लाकर सेठजी को दे दिया और स्वयं अपने कमरे में चली गई ।

उस लिफाफे पर की लिखावट देखते ही सेठजी काँप उठे ! उनके हाथ से लिफाफा छूटकर भूमि पर गिर पड़ा । उन्होंने उसे पुनः उठाया और धीरे से लिफाफे का मुँह फाड़ डाला । अन्दर से कितने ही पत्र निकल आये, उन्हें देखते ही राकेशरमण के मुख से एक दीर्घ करुण श्वाँस निकल गई । यही वे प. थे, जिन्हें जवानी के दिनों में सेठजी ने सुखदा को लिखे थे । यही वह लिफाफा था, जिसे सुखदा ने मरते समय रायबहादुर निहालचन्द को विकल को देने के लिए दिया था । सेठ जी एक-एक करके सभी कागज पढ़ गये, फिर पागल-से स्वतः बड़बड़ा उठे—

"तो क्या विकल ही मेरा पाप-पुत्र है...हे ईश्वर !"

० ● ०

दूसरे दिन डाक से कान्ता को अनूप का एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—

कान्ता देवी ! निराशा ने मेरे हृदय और मस्तिष्क को अस्त-व्यस्त कर दिया है। मुझे पढ़ने की चाह नहीं रही। अब घर पर ही रहूँगा—शायद फिर कभी न आ सकूँ।

रात मैं स्वयं आपके घर गया था, परन्तु आप न मिल सकी। मुझे देर हो रही थी, अतः एक आदमी को वह पत्र देकर चला आया था। आशा है कि आपने वह लिफाफा अपने पिता को दे दिया होगा। मुझे दुःख है कि आपके पिता से मिल न सका। मैं कितनी बार आपके घर आया, परन्तु मेरा दुर्भाग्य कि एक बार भी आपके पिता के दर्शन न हुए और न उनसे परिचय ही प्राप्त हो सका।

आप से बिना पूछे ही मैं आपकी एक चीज अपने साथ लिए जा रहा हूँ— उसके लिए माफ कीजिएगा ! वह चीज है आपकी मूर्ति ! ...जी हाँ ! आपकी मधुर मूर्ति, मैं अपने नेत्रों में बन्द करके लिए जा रहा हूँ ! इसके बदले में अपना दिल आपके कदमों पर रख आया हूँ ! प्यार कर सकें तो ठीक है, नहीं तो ठुकरा कर उसका नामशेष कर दीजियेगा।

आपका

—अभागा अनूप

पुनश्च:—और कभी-कभी पैर धोने के लिए मेरे आँसुओं की आवश्यकता पड़े तो मुझे याद कीजियेगा, आ जाऊँगा, वैसे सम्भवतः भेंट न हो सकेगी।

कान्ता को आँसू आ गये, उस युवक का प्रलाप पढ़कर ! कैसे वह उस अभागे युवक को बताये कि उसका दिल उसके पास नहीं है—वह है विकल के पास !

१७

प्रातःकाल हुआ, परन्तु विकल को अवस्था तनिक भो न सुधरी ज्वर १०५ बना रहा-खाँसो और घाव का दर्द बढ़ गया था। गुलाब और अफजल शोकमग्न विकल के पास बैठे थे।

एकाएक विकल के दरवाजे पर एक कार आकर रुक गई और उसपर से उतरे, सेठ राकेशरमण! सेठजी को अपनी ओर आता देखकर अफजल ने गुलाब को अपने कमरे में चले जाने के लिए इशारा कर दिया।

"आइये गरीब परवर!...." अफजल ने एक मोढ़ा लाकर रख दिया सेठजो उसपर हताश-से बैठ गये।

"कैसी तबीयत है, विकल?" उन्होंने पूछा।

"जरा भी अच्छी नहीं, हुजूर?...." अफजल ने कहा-"रात-भर बकता रहा है। खुद कसम! मैं तो रंजोगम से मुर्दा हुआ जा रहा हूं। वह मुझे बेटे से भी ज्यादा प्यारा है, हुजूर!"

सेठ राकेशरमण पानी-पानी हो गये, उस दुर्दान्त मुसलमान की बातें सुनकर। उफ्! एक यह है, जो गैर के बेटे को अपने बेटे की तरह प्यार करता है और एक मैं हूँ जो स्वयं अपने बेटे को बेटा कहकर पुकारने में लज्जा का अनुभव कर रहा हूं।

अफजल किसी काम से बाहर चला गया। सेठजो विकल की चारपाई पर आकर बैठ गये। उस समय उयके हृदय में ममत्व का दारुण रोर मचा हुआ था। चाहते थे बिकल को--अपने पुत्र को कफेजे से लगा लेना. मगर क्या मुँह लेकर विकल को बतायेंगे कि वह उनका पाप-पुत्र है। कैसे बतायेंगे वह, कि अपने को जो अकेला समझ रहा है वह वास्तव में अकेला नहीं है। उसके पिता हैं, सेठ राकेशरमण! उसकी बहन है कान्ता कुमारी!

"विकल!..." सेठजी ने कोमल स्वर में पुकारा। उनका हृदय जोरों से धड़क रहा था।

"...."विकल ने शिथिल दृष्टि से देखा।

"कैसी तबोयत है, बेटा?..."

"अच्छी नहीं है...."

"इधर तुम बहुत दिनों से मेरे यहाँ आते क्यों नहीं थे ? कान्ता को पढ़ाना क्यों छोड़ दिया ?"

"मेरी गरीबी ही मेरे लिये नियामत है, बाबूजी ! अमीरों की संगत करके क्या करूँगा ? जो भुगत रहा हूँ, वही बहुत है....एक अकेले आदमी के विरुद्ध जैसे दुनिया ही उठ खड़ी हुई है...."

"अकेले हो ?...." सेठ जी की आँखें भर आईं—"इधर देखो विकल !....मैं जो हूँ...."

"आप यह क्या कर रहे हैं, सेठजी !....आप सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, मगर पिता की तरह मेरे हरएक कष्टों का अनुभव तो नहीं कर सकते ?" विकल रो पड़ा। उसे जोरों से खाँसी आ गई।

सेठजी का पितृ-हृदय हाहाकार कर उठा। उफ् ! उन्हीं का बेटा उन्हीं के सामने ऐसी बातें कह रहा है...? सेठजी का कलेजा फटने-फटने को हो गया। उन्होंने विकल होकर विकल का हाथ पकड़ लिया बोले—"विकल !...बेटा !"

इन दो शब्दों ने विकल के हृदय में आग भर दी। उसे लगा, जैसे उसके अपने पिता आकर उसे पुकार रहे हों—"विकल !.... बेटा !...."

"मैं ही तुम्हारा अभागा बाप हूँ, विकल बेटा !" सेठजी आवेश-पूर्ण स्वर में बोले।

"आप ?....आप मेरे पिता हैं...." विकल इस प्रकार चीख उठा, मानो यह बात सुनकर उसे असह्य पीड़ा हुई हो—"आप मेरे अकेलेपन का उपहास कर रहे हैं, बाबूजी ! सचमुच अमीरों को हृदय नहीं होता..."

"हाँ विकल !....मैं सचमुच तुम्हारा पिता हूँ...."

इस कथन में करुणा का अपार सागर निहित था। यह उस पुरुष का कथन था, जिसने उसकी माँ के यौवन के साथ खिलवाड़ किया था, फिर उसे गेंद की तरह पैरों से ठुकरा दिया था। यह समाज के उस कर्णधार की वाणी थी जिसका दुष्कर्म अक्षम्य था, फिर भी समाज में उसका आदर-सम्मान था।

परन्तु वह ?....जो इस संसार में अकेला था, जिसे बाल्यावस्था से ही समाज ने अवहेलना की दृष्टि से देखा था वह गरीब था, चोर था, नीच था, पतित था और दुनियावालों की आँखों में क्या-क्या नहीं था ?

"न कहिये...ऐसा न कहिये बाबूजी ! युगों से सोये हुए मेरे मृत ज्ञान को जाग्रत न कीजिये...कह दीजिये कह दीजिये कि आप मेरे पिता नहीं हैं...." विकल उद्विग्न हो उठा था। उसके मस्तिष्क की नसें फूल आई थीं। उसकी अवस्था चिन्तनीय हो गई थी। पागल-सा हो रहा था वह।

"कैसे न कहूँ, बेटा विकल ! तुम मेरे बच्चे हो, मैं तुम्हारा पिता हूँ...."

"आप मेरे पिता हैं ?...."

"हाँ...और कान्ता तुम्हारी बहन है ! सेठजी ने कहा।

"उफ् !....वह मेरी बहन है !...." विकल ने जोरों से अपना मस्तक चारपाई पर दे मारा।

"कान्ता से कुछ भी न बताना बेटा ! सुनकर उसे दुःख होगा...."

"नहीं बताऊँगा--नहीं बताऊँगा....पिता का पाप मुझे छिपाना ही पड़ेगा। पिता ने पुत्र का ख्याल नहीं किया, मगर पुत्र तो पिता का ख्याल करेगा ही...." विकल शिथिल स्वर में बोला—"जाइये, चले जाइये यहाँ से !....नहीं तो समाज आपकी प्रतिष्ठा पर घृणित व्यंग की बौछारें कर, आपको असंतुलित कर देगा...."

"यह क्या कहते हो बेटा, विकल !....तुम्हें भी साथ ले चलूँगा मैं। अब समाज की मुझे परवाह नहीं...."

"आप जाइये ! आपको मेरी माँ की शपथ ...आप चले जाइये ! आपको देखकर मुझे जहरीले साँप का ध्यान आ जाता है। मैं आपके पास नहीं रह सकता...." एकाएक विकल की आवाज तीखी हो गई—"मैं आपका मुँह भी नहीं देखना चाहता। क्या आप समझते हैं कि मैं अपनी माँ का अरमान इतनी जल्दी भूल जाऊँगा ? क्या आपने मुझे भी अपने ही जैसा कोई कायर व्यक्ति समझ लिया है ?....आपके

पास धन है, आप हजारों को इज्जत खरीद सकते हैं हमारे पास गरीबो है हम इज्जत महफूज रखना जानते हैं...."

"विकल बेटा !...." सेठजी अवरुद्ध कण्ठ से बोले ।

"जाइये ! चले जाइये...." जोर से चिल्ला उठा विकल। खांसी आई और छटांक भर खून फर्श पर गिर पड़ा।

अफजल ने चीख सुना। वह भागता हुआ आया। सेठ राकेश-रमण अपनी गीली आंखें पोछते हुए बाहर चले गये। अफजल ने आगे बढ़ कर विकल को सम्हाला।

विकल को बकझक बढ़ गई। कई घण्टे तक उसकी हालत चिन्ता-जनक रही। हाथ के घाव का दर्द बढ़ गया।

ठीक दोपहर को कान्ता आई। उसे देखते ही विकल का हृदय चीत्कार कर उठा। वह गश खाकर गिर पड़ा चारपाई पर। कान्ता ने उसे बढ़कर सम्हाला। थोड़ी देर में विकल चैतन्य हुआ तो वह बोला—"कान्ता ! तुम जाओ ! ईश्वर के लिये चली जाओ..."

"यह क्या हो गया है, तुम्हें ?"

किस मुंह से विकल बताये कि उसे क्या हो गया है ? कैसे वह बताये कि उसका स्वप्न-संसार नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है ?

"बोलो विकल !..." कान्ता ने विह्वल दृष्टि से विकल की ओर देखा और उसका हाथ पकड़ लिया। विकल चौंक पड़ा, जैसे कोई सांप छू, गया हो। वह चिल्ला उठा—"जाओ ! जाओ ! चली जाओ, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगा...."

कान्ता रो पड़ी। उसने विकल की छाती पर अपना मस्तक टेक दिया—"विकल ! मेरी गलती माफ कर दो....मुझसे भारी अपराध हुआ है।"

विकल का उन्माद कुछ कम हुआ तो वह बोला—"तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है, कान्ता ! अपराधी मैं हूं !"

"तुम मुझे नष्ट क्यों कर रहे हो, विकल !..." कान्ता दयनीय

दृष्टि से विकल की ओर देखती हुई बोली—"मैं तुम्हें चाहती हूँ।"

विकल का हृदय धू-धू कर जल उठा। उफ् बहन-भाई को चाहती है....यह है समाज का अभिशाप और मानवता का कलंक !

वह पुनः उन्माद में चिल्ला उठा—"दूर हट जाओ....दूर हट जाओ, कान्ता !"

अफजल हैरान था। वह विकल, जिसने उस दिन रात के वक्त माफी के लिये उसे कान्ता के घर भेजा था—आज कान्ता को दुत्कार रहा है। वह धीरे से कान्ता से बोला—"आप इस वक्त जाइये, हुजूर....नहीं तो खुदा कसम ! पागल हो जायगा यह...."

कान्ता भी राकेशरमण की तरह, आँखें पोंछती हुई चली गई।

"अफजल भाई !...." विकल ने पुकारा। अफजल पास आ गया। "देखो अफजल भाई, अब मैं यहाँ नहीं रहना चाहता। यह डेरा बहुतेरे जान गये हैं। यहाँ आकर लोग मुझे पागल बना देंगे।"

"तब !...."

"आज ही किसी दूसरे मुहल्ले में मकान खोजकर डेरा वहाँ ले चलो...." विकल ने कहा—"किसी सुनसान उजाड़ मुहल्ले में मकान खोजो, जहाँ हवा भी प्रवेश न पा सके...."

"आज ही !"

"हाँ आज ही...! जितना जल्दी हो सके।"

अफजल गुलाब के पास आया। बोला—"विकल दूसरी जगह घर लेने को कह रहा है।"

"क्यों ?....आखिर क्यों....?"

"न जाने क्यों आज वह पूरा पागल हो रहा है। क्या किया जाय ?"

"जब कह रहे हैं तो जाओ, किसी दूसरी जगह मकान ठीक कर लो...." गुलाब ने कहा।

उसी दिन अफजल ने दूर के मुहल्ले में कम भाड़े का एक

मकान ठीक कर लिया और शाम होते-होते अपना सब सामान उसमें ला रखा। सामान अधिक न था—फिर भी अफजल को रिक्शे पर समान लादकर चार बार दौड़ना पड़ा। विकल, गुलाब और अफजल उसी दिन नये मकान में चले आये।

*　　　*　　　*　　　*

कान्ता उस दिन शाम को विकल के पुराने डेरे पर आई तो सब सुनसान था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे लोग अपने सब समान सहित कहीं चले गये। कान्ता रो उठी, तड़प उठी, छटपटा उठी।

कान्ता की अवस्था विकल का ध्यान करके शोचनीय होती गई। सेठ राकेशरमण पुत्री की दशा देखकर परेशान थे, परन्तु कैसे कसे यह बता सकते थे कि विकल उसका भाई है। यह बात सुनकर उस कोमल-हृदया बालिका का दिल टूक-टूक नहीं हो जायगा ?

जिस प्रकार की गल्ती आजकल के अधिकांश पिता करते हैं, उसी प्रकार की गलती सेठ राकेशरमण ने भी की। उन्होंने सोचा की शीघ्र ही शादी हो जाने से कान्ता का शोकमग्न-हृदय आनन्दित हो उठेगा।

१८

नये मकान में आने पर कुछ दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। अफजल प्रात:काल ही अपने काम की फिराक में बाहर चला जाता और दोपहर तक खाने-पीने के लिए काफी पैदा कर ले आता। गुलाब विकल के पास बैठी हुई अनेक प्रकार की बातों में तल्लीन रहती। विकल की अवस्था क्रमशः अच्छी होती जा रही थी और उम्मीद होने लगी थी कि कुछ ही दिनों में वह पहले जैसा स्वस्थ हो जायगा। आज कई रोज से बुखार नहीं आ रहा था। खाँसी भी बहुत कम थी। हाथ का घाव भी आधा सूख चला था।

मगर एक दिन अचानक विकल का शरीर गर्म हो आया और आधे घण्टे में ही तवे के समान जलने लगा। खाँसी का वेग भी बढ़ गया, तूफान की तरह। हाथ के घाव से रह-रहकर भयानक टीस उभरने लगी। विकल को जान पड़ा, जैसे मारे गर्मी के अभी उसका मस्तक फट पड़ेगा। धीरे-धीरे उस विकराल गर्मी ने उसके मस्तिष्क को विकृत-सा कर दिया। रह-रहकर पिछले दिनों की घटनायें उभर कर उसे और भी उद्विग्न करने लगी। वह विक्षिप्त-सा हो उठा।

गुलाब उस समय खाना पका रही थी। अफजल अभी तक बाहर से लौटा न था। एकाएक विकल के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनकर गुलाब उसके कमरे की ओर दौड़ी। वहाँ की हालत देखते ही वह सन्न हो गई। उसने देखा कि विकल पागल-सा बड़-बड़ाता हुआ कमरे में घूम रहा है। उसने हाथ पर की पट्टी खोलकर फेंक दी है, जिससे बड़ा-सा अधसूखा घाव दिखाई पड़ने लगा है। उछलने-कूदने से विकल के उस घाव में खरोंच लग गई है, जिससे रक्त चू रहा है।

"उफ्! यह तुमने क्या कर डाला ?...." कहती हुई गुलाब विकल के पास आ रही। विकल ने चौक कर उसकी ओर देखा, फिर लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया—"तुम आ गई ?" वह बकने लगा—"तुमने मुझे क्या बना डाला ? तुमने मुझे आदमी से पशु बना डाला...मैं दुनियाँ का अकेला आदमी हूँ....मेरी जीवन-संगिनी बन जाओ—" विकल ने गुलाब को अपने वक्षस्थल के पास खींच लिया—"बोलो ! कुछ तो कहो कान्ता ! मुझे बरबाद करके थोड़ा हँस हो पड़ो....कोई ऐसा भी है, जो अपना घर फूक-कर खुश हो....मगर तुम हो, कि हँसती हो आग लगाकर इस दिल में !"

"विकल !....सम्हालो अपने को विकल !...." गुलाब ने अपने को विकल के बाहुपाश से छुड़ाते हुए कहा। यही शब्द थे,

जिन्हें एक दिन विकल ने गुलाब के लिए कहा था—"भाभी ! सम्हालो अपने को भाभी !" आज उन्हीं शब्दों को गुलाब को दुहराना पड़ा। अब गुलाब को समझ में आ गया कि प्रेम में वासना हो सकती है, परन्तु वासना में प्रेम नहीं।

"तुम !....भाभी तुम ?" गुलाब को पहचानते ही विकल विक्षिप्त हो उठा।

इसी समय अफजल दबे पाँव कमरे में घुसा, परन्तु वहाँ की हालत देखकर वह घबड़ा-सा गया—"या खुदा ! इसने तो अपना घाव-खराब कर डाला है। इतना खून....इतना !....उफ् ! पट्टी क्यों फेंक दी नादान ने...." विकल के घाव की हालत देखते ही अफजल हाय कर उठा—"इसे अस्पताल ले जाना होगा—नहीं तो घाव बिगड़ जायगा....मैं इसे ले जा रहा हूं तुम कुछ खाकर सो रहना। मेरा इन्तजार न करना—" यह बात अफजल ने गुलाब से कही।

अफजल उसी यमय विकल को रिक्शे पर बैठाया और उसे लेकर अस्पताल गया, जहाँ मुफ्त दवा देने की व्यवस्था थी ! परन्तु रात में उसकी पुकार कौन सुनता ? लाचार होकर अफजल ने जब एक कम्पाउण्डर को चार रुपये घूस दिये, तब असिस्टेण्ट डाक्टर ने आकर विकल के घाव की जाँच की और नाक सिकोड़ कर बोला—"कोई उम्मीद नहीं। कल तक घाव सड़ जायगा। इसे १०५ डिग्री बुखार है। ले जाओ, यहाँ यह भर्ती नहीं किया जा सकता।"

अफजल के बहुत रोने-गिड़गिड़ाने पर, तब कहीं जाकर उस निर्दयी डाक्टर ने विकल को अस्पताल में भर्ती किया, वह भी केवल हाथ का घाव अच्छा होने तक के लिये। विकल के हाथ की मरहम-पट्टी कर दी गई। काफी रात गये, अफजल ने घर लौटकर गुलाब से सब हाल कह सुनाया।

परन्तु जो होना था, वह होकर ही रहा। विकल के हाथ का घाव सड़ गया। डाक्टर ने तुरन्त ही हाथ काट देने की राय दी, नहीं तो जान का खतरा था। अफजल रो पड़ा। गुलाब ने सर पीट लिया। और विकल का बायाँ हाथ काट दिया गया।

बीस दिन बाद कटा हाथ अच्छा हो जाने पर, विकल को अस्पताल से छुट्टी मिली। वह पुनः अफजल और गुलाब के साथ रहने लगा। फिर भी रोग-मुक्त नहीं हुआ।

अब अफजल, गुलाब और विकल मानों एक कुटुम्बी हो गये थे। अफजल पैदा करता और वे दोनों बैठकर खाते। दो-दो चार-चार दिन पर एकाएक विकल की हालत खराब हो जाती और वह बकने-झकने लगता था।

• ० ०

कान्ता के प्रेम से निराश होने पर अनूप के कोमल हृदय पर बहुत गहरा धक्का लगा। अवकाश के समय वह अपने बँगले में पड़ा रहता और शेष समय जमीन्दारी की देख-रेख में बिता देता। बनारस से लौट आने पर सालिसिटर साहब से विकल के सम्बन्ध की सारी बातें हुई थीं और विकल के रहने का पता बताकर उसने उसे बुला लेने का आदेश दिया था—परन्तु सालिसिटर साहब के सतत प्रयत्न करने पर भी विकल का पता न लग सका था। लगता कैसे, वह तो उस मकान को छोड़कर अन्यत्र जा बसा था।

एक दिन अनूप अपने कमरे में बैठा हुआ कुछ पढ़ रहा था, कि उसी समय सालिसिटर साहब ने वहाँ प्रवेश किया। अनूप ने पूछा—"क्या हुआ ?....नई अम्माँ का पता लगा ?"

"नहीं ! वे दोनों वह होटल बेचकर न जाने कहाँ भाग गये ?" सालिसिटर साहब ने कहा।

"अच्छा हुआ !" कहकर अनूप ने एक ठण्ढी साँस ली। सॉलि-सिटर साहब एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले—"देखिये ! आपसे एक बार फिर शादी करने का अनुरोध करता हूँ....!"

"क्यों व्यर्थ मुझे तंग करते हैं...." अनूप बोला—"एक बार कह दिया कि मैं शादी नहीं करूँगा, परन्तु आप मानते ही नहीं..."

"इस बार जब मैं बनारस गया था, तो एक नई जगह शादी की बात चलाई थी। बड़ा सम्पन्न घराना है। यह देखिये, लड़की की फोटो...." कह कर सॉलिसिटर ने एक फोटो अनूप के सामने रख दी। यद्यपि अनूप की कोई इच्छा उस फोटो को देखने की न थी.... फिर भी एक उड़ती दृष्टि उस पर डालते ही उसने अपने आश्चर्य को छिपाते हुए कहा—"जैसी आपकी मर्जी...."

सचमुच सॉलिसिटर को महान् आश्चर्य हुआ, हठो अनूप को इस प्रकार सरलतापूर्वक शादी के लिये प्रस्तुत देखकर।

कान्ता के पिता का यह ख्याल था कि शादी होते ही कान्ता की तबीयत दुरुस्त हो जायेगी। दिन-पर-दिन विचार पक्का होता गया और अन्त में उन्होंने एक अच्छे घराने में शादी पक्की करने के पहले, सेठ राकेशरमण ने कान्ता की सम्मति जाननी चाही थी, परन्तु कान्ता तो अपने ही विचारों में तल्लीन थी। पिता के झक की उसे कुछ परवाह न थी। उसने सुना कि उसकी शादी पक्की हो गयी है—परन्तु कहाँ और किसके साथ ? इस बात को जानने का उसने तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। वह चुप ही रही, कुछ बोली नहीं। बलि के बकरे भी कहीं बोलते हैं ?

शादी का दिन ज्यों-ज्यों निकट आने लगा, त्यों-त्यों कान्ता का रोना बढ़ता गया। लोगों ने समझा की शादी के पहले लड़कियाँ रोती ही हैं....परन्तु क्या कान्ता की तरह खून के आँसू रोती हैं ?

निश्चित दिन को बारात आई। रोती हुई कान्ता—विकल के नाम की माला जपती हुई दूसरे की हो गयी ! समाज के क्रूर हाथों

ने उसके सन्तप्त हृदय को कुचलकर, केवल उसकी हड्डियों का ढाँचा एक भागे युवक के आगे फेंक दिया।

विवाह के दिन वर तथा कन्या कुहबर में दो मिनट के लिये मिले। वर का चेहरा देखते ही कान्ता का मुँह सूख गया वह वर था अनूप !

* * * *

उस दिन विकल की तबीयत अधिक खराब थी। वह चारपाई पर लेटा हुआ कराह रहा था। निरन्तर ज्वर ने उसे सुखा डाला था। अब वह उठकर बैठने में भी कष्ट का अनुभव करता था। गुलाब अपना टूटा हुआ दिल, धधकता हुआ प्रेम लेकर दिन-रात विकल के पास बैठी रहती थी। विकल हैरान था उस मुसलमान छोकरी की ममता देखकर।

आज प्रात:काल से ही वह बुखार में बुत पड़ा हुआ विचार-सागर में निमग्न था। जो बात उसने कभी नहीं सोची थी, वह आज रह-रहकर उसके हृदय को उद्वेलित कर रही थी। वह सोच रहा था—न जाने क्या-क्या और कैसा-कैसा ?

"उफ् ! वह इस दुनिया में अकेला है। उसका बायाँ हाथ काट दिया गया है, अब उसे सिर्फ एक हाथ है। अब वह लूला है।

अच्छा होने पर वह कमायेगा कैसे ?....कब तक वह अफजल का आश्रित रहकर, उसकी कमाई से अपना पेट भरता रहेगा ! अफजल ! गिरहकट अफजल द्वारा अर्जित पाप की कमाई खाता है वह, ठगकर लाये हुए रुपयों से अपना पेट भरता है ! उफ् है....धिक्कार है उसकी जिन्दगी पर !"

विकल को ऐसा लगा मानो उसकी अन्तरात्मा साकार रूप में खड़ी होकर उसे धिक्कार रही हो—धिक्कार है ! धिक्कार है ! विकल के कान बहरे हो चले। उसे लगा जैसे कमरों की निर्जीव दीवारें सजीव होकर उससे कह रही हों—धिक्कार है ! धिक्कार है !!

"अफजल भाई !...." वह चिल्ला उठा ।

"क्या है विकल ?" अफजल उसके पास चला आया, परन्तु विकल चिल्ला उठा — "नहीं-नहीं !....मैं नहीं खाऊँगा—नहीं खाऊँगा—पाप की कमाई नहीं खाऊँगा....तुम दूर रहो—दूर हो जाओ मेरे सामने से —तुम गिरहकट हो — डाकू हो...."

अफजल सर थाम कर बैठ गया। वह डाकू है, मगर डाकू-सा दिल उसने नहीं पाया है, नहीं तो इस जरा से छोकरे की गर्दन पकड़कर अभी टीप देता। वह गिरहकट है केवल अमीरों के लिए, जिनके पास सोने की घड़ियाँ और हीरे की अगूठियाँ हैं—जिनके लिए गरीब तरसते हैं !

इस युवक के साथ उसको हमदर्दी है, मुहब्बत है, वह उसकी हर एक ख्वाहिश को अपना बच्चा जानकर पूरी करता है आज भी करेगा। "जरूर यह पाप है, विकल ! खुदा-कसम ! अब कभी गिरहकटी नहीं करूँगा। कल से रिक्शा चलाऊँगा...." अफजल बोला। विकल ने संतोष की सांस ली और खांसने लगा।

* * *

समाज ने अनूप और कान्ता का विवाह तो कर दिया, परन्तु कान्ता का हृदय अनूप के प्रति केवल सहनुभूतिपूर्ण हो सका, प्रेमपूर्ण नहीं किसी प्रकार दिवस व्यतीत होने लगे। लोगों के देखने में तो वे दोनों पूर्ण सुखी थे, परन्तु वे दोनों मन से सुखी न थे।

अनूप कान्ता का मनोरंजन करने के लिए बहुत प्रयत्न करता, परन्तु सदैव असफल रहता। विकल की खोज बराबर होती रही। कई समाचार पत्रों में विज्ञापन भी दिया गया, परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। अब मासिक पत्रिकाओं में श्रीयुत 'व्यथित' बी० ए०, के लेख भी नहीं निकलते थे।

अनूप की पूरी सहानुभूति कान्ता एवं विकल के साथ थी। यदि वह चाहता, तो कान्ता से उसकी शादी कभ नो हो पाती,

क्योंकि जब सॉलिसिटर साहब ने उस लड़की का फोटो दिखाया था, तभी वह पहचान गया था कि वह फोटो कान्ता की है।

इस बात का घोर पश्चात्ताप था उसे। बहुत सोच-विचार के बाद उसने विकल के संस्मरणार्थ तथा कान्ता के मनोरंजनार्थ एक विशाल कार्य की नींव डाली। उसने विकल के नाम पर एक दरिद्राश्रम बनवाने का विचार किया और शीघ्र ही सॉलिसिटर एवं कान्ता के सहयोग से यह विचार कार्यरूप में परिणत होने लगा।

लगभग सालभर के अथक परिश्रम एवं अतुल व्यय के पश्चात् दरिद्राश्रम का विशाल भवन बनकर तैयार हो गया। अनूप ने बहुत मनोयोग से इस कार्य को पूरा किया था। कान्ता भी अब प्रसन्न-बदन प्रतीत होने लगी थी।

"विकल दरिद्राश्र" का उद्‌घाटनोत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। विकल का एक विशाल तैलचित्र दरिद्राश्रम के हॉल में लगाया गया। उद्‌घाटनोत्सव में उस तैलचित्र पर पुष्पमाला चढ़ाते समय अनूप की आँखें भर आई थीं और कान्ता तो तीव्र वेग से रो पड़ी थी।

"विकल दरिद्राश्रम" का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। नित्य दोपहर एवं संध्या को गरीबों एवं दरिद्रों को भरपूर भोजन एवं वस्त्र देने का प्रबन्ध था। कोई भी दरिद्र वहाँ से निराश नहीं लौटता था। दरिद्रों के रहने का उत्तम प्रबन्ध था। अनूप और कान्ता अत्यन्त मनोयोग पूर्वक सभी कार्यों का निरीक्षण किया करते थे। प्रारम्भ से ही विकल ने विपत्तियों में ही दिवस व्यतीत किये थे। अतः वे दोनों विपत्ति-ग्रस्तों की सेवा करके अपने को धन्य समझने लगे। क्योंकि विपत्ति-ग्रस्तों की सेवा ही तो विकल की सेवा थी।

कान्ता और अनूप अब भी निराश नहीं हुए थे। अवकाश मिलने पर, अब भी विकल की यथाशक्ति खोज कर रहे थे। कभी-

कभी वे दोनों स्वयं ही बनारस तथा निकटवर्ती नगरों में घूम-घूमकर विकल की खोज किया करते थे। उन दोनों को पूर्ण विश्वास था कि जब विकल मिल जायगा और यहाँ आकर वह इस वृहद दरिद्राश्रम को देखेगा तो अत्यन्त प्रसन्न होगा।

१६

आकाश पर बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े, आपस में आलिंगन कर गड़गड़ा उठे। चिल्ला-चिल्लाकर पानी बरसने लगा। बनारस की नीची सड़कों पर गंगा-यमुना उतर पड़ी। पानी की सफेद बूँदें बदन पर पड़ते ही सिहरन पैदा कर देती थीं।

विकल की अवस्था आज अधिक चिन्ताजनक थी। बराबर खाँसी आ रही थी। बार-बार खून के थक्के उसके मुँह से निकल पड़ते थे। शरीर का तापमान पूर्ववत् १०५ था। अवसाद में डूबी गुलाब उसकी चारपाई की बगल में बैठी थी। अफजल रिक्शा लेकर बाजार गया हुआ था। विकल बुखार की गर्मी से अर्द्ध चैतन्य अवस्था में चारपाई पर पड़ा था। उसकी आँखें बन्द थीं। साँस घर्र-घर्र चल रही थी।

बादलों का विकट गर्जन सुनकर विकल चौंक पड़ा। उसने उठने की कोशिश की, परन्तु आधा उठते ही पुनः चारपाई पर गिर पड़ा। गुलाब ने उसे सम्हाला। ज्योतिहीन नेत्रों से विकल ने गुलाब की ओर देखा। देर तक देखता रहा, जैसे पहचान न रहा हो। फिर स्थिर आवाज में उसने पूछा—"यह कैसी आवाज आ रही है ?...."

"पानी बरसने की आवाज है यह...." गुलाब ने उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा। मगर उसकी आवाज सुनते ही विकल चौंक पड़ा—"कौन ?....भाभी तुम....?"

"हाँ ! मैं ही हूं !" गुलाब ने कहा।

"तुम हो भाभी ?....आँखों के आगे अन्धेरा छा गया है। कुछ दिखाई नहीं देता, भाभी ?"

"...." गुलाब मन-ही-मन रो पड़ी।

"तुम अभी तक बैठी हो, भाभी ?...."

"क्या करूं ?... तुम भी तो अभी तक बीमार ही हो...."

"खाना बनाया ?...."

"हाँ !...."

"खाया ?...."

"नहीं...."

"क्यों नहीं खाया, भाभी !...." विकल अधिक बोलने के कारण हाँफने लगा था।

"भूख नहीं हैं !" गुलाब ने उत्तर दिया।

"क्यों भूख नहीं है ?....भाभी ! तुम्हें भूख क्यों नहीं लगती ?

"तुम बीमार जो हो...."

"बीमार ?...." विकल टूटती आवाज ने बोला—"मैं अब हमेशा ही बीमार रहूँगा, भाभी !... अब अच्छे होने की आशा नही....अब जीवन से निराश..."

चुप रहो....चुप रहो....तुम बड़े संगदिल हो। किसी का दिल दुखाने में तुम्हें मजा मिलता है, क्या ?...." गुलाब ने विकल के मुँह पर अपना हाथ रख दिया ! विकल चुप रहा। गुलाब उसके सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। विकल को लगा जैसे उन हाथों में संजीवनी शक्ति हो। उसके नेत्रों की विलुप्त ज्योति क्रमशः लौट आई— परन्तु सिर की पीड़ा और ज्वर का ताप पूर्ववत् बना रहा।

पानी अब तक बरस रहा था। ठण्डी हवा के झोंके और पानी की फुहार विकल के कष्ट को द्विगुणित कर रही थी। विकल मरणासन्न स्वर में बोला—"जाओ भाभी ! खाना खा लो....मेरी उम्मीद छोड़ दो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों मैं ऊपर आकाश पर उड़ा जा रहा हूँ...."

"या खुदा ! क्या हो गया है, तुम्हें...."

उसी समय पानी की बौछारों से भींगा हुआ अफजल आ पहुँचा। उसके कपड़ों से टप-टप पानी चू रहा था। दरवाजे पर से अफजल ने पूछा—"कैसी तबीयत है विकल की ?"

"अल्लाह ही रहम करे..." गुलाब ने कहा—"खाना बना दिया है....चलो, तुम्हें दे दूँ...." गुलाब अफजल को खाना देने के लिये चली आई।

विकल ने देखा था—खूब देखा था कि वह अफजल, जो केवल एक घण्टे बाजार जाकर चार-पाँच रुपये कमा लाता था—अब केवल उसी के कारण दिन भर रिक्शा खींचते-खींचते परेशान हो जाता था, परन्तु पेट भरने तक को पैसा न मिलता था। आज इस बरसात में भी उसे फुर्सत न थी। वह भींगते-भींगते रिक्शा लेकर गया था, और भींगते-भींगते ही आया था।

विकल का हृदय हाहाकार कर उठा। उफ् ! इस दीर्घाकार मुसलमान गुण्डे ने उस नादान युवक के लिये क्या-क्या तकलीफें नहीं सहीं ? वह गुण्डा नहीं, फरिश्ता है। परन्तु एक वह है, जो दूसरों के टुकड़ों पर गुजर कर रहा है, दूसरों पर भार बनकर पड़ा हुआ है, अपने लिये दूसरों को भी तकलीफ दे रहा है—धिक्कार है।

करुण क्रन्दन से विकल का हृदय भर गया। उसके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह मन-ही-मन बुदबुदाया—'नहीं रहूँगा....अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा....दूसरों की कृपा पर, दूसरों के अन्न पर आश्रित नहीं रहूँगा....मैं स्वयं पैदा कर सकता हूँ....मैं स्वयं रिक्शा खींच सकता हूँ....एक ही हाथ है तो क्या हुआ, बहुत है.... रिक्शा खींचने भर को एक ही हाथ काफी है...." विकल झटके के साथ चारपाई पर से उठ खड़ा हुआ। उसके पैर लड़खड़ाये, परन्तु वह सम्हल गया। इस समय उसके शरीर में न जाने कहाँ का दैवी बल आ गया था। वह दरवाजे की ओर बढ़ा। इस समय उसका

मस्तिष्क विकृत हो गया था। उसके सामने सारा जगत् घूमता हुआ-सा प्रतीत हो रहा था।

वह चुपचाप दरवाजा लांघकर सड़क पर आ रहा। पानी अभी तक बरस रहा था। तवे के समान ऊष्ण शरीर पर पानी की बूंदें छन-छन पड़ने लगीं, मगर उसमें आसुरी बल आ गया था। उसने उस ओर कदम बढ़ाया, जिधर उसका रिक्शा था।

वह कांप रहा था परन्तु उसका आतमबल उसका साथ दे रहा था। उसने एक हाथ से रिक्शा उठाया और पानी में भींगते हुए वह आगे बढ़ा।

"कपड़े नहीं उतारूंगा, अभी फौरन रिक्शा लेकर जाना है आज एक पैसा भी वसूल नहीं हुआ है..." खाते हुए अफजल ने कहा।

"उनका दिमाग ठिकाने नहीं रहता– जो जी में आता है कह देते हैं...." गुलाब कहने लगी—"तुम उनकी बात में पड़कर क्यों तकलीफ उठाते हो रिक्शा चलाना छोड़ो, जो करते थे, वही करो–"

"चुप रहो गुलाब!...तुम नहीं समझ सकती—नहीं समझ सकती कि विकल के कथन में कितना सत्य है?...." अफजल बोला– "विकल अकेला है, उसके पास जाओ। मुझे जरूरत होगी तो पुकार लूंगा...."

गुलाब विकल के कमरे में गई, परन्तु दूसरे ही क्षण दौड़ती हुई आकर बोली—"वे तो नहीं..."

"नहीं है?" थाली पटक कर उठ खड़ा हुआ अफजल। मुंह का ग्रास उसने जमीन पर थूक दिया—"क्या कहा? नहीं है? गया कहाँ?..." वह दौड़ा विकल के कमरे की ओर। रत्ती-रत्ती जगह देख डाली परन्तु वह कहीं नहीं दीख पड़ा। सामने सड़क पर देखा तो रिक्शा नदारत। अफजल माथा ठोककर बोला—"वह रिक्शा लेकर गया है—"

अफजल दौड़ पड़ा शहर की ओर बदहवास। गुलाब भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी। आसन्न विपत्ति की आशंका ने दोनों को अस्थिर कर दिया था। उफ्! उनका प्यारा पंछी आज उड़ गया था, वह पंछी जिसे अपने जिगर का खून पिला कर दोनों ने पाला था।

* * * *

पानी का वेग और बादलों का गर्जन घटा नहीं। विकल लड़खड़ाता हुआ एक हाथ से रिक्शा खींचता सड़क पर चला जा रहा था। अन्तिम अवस्था में भी उसके शरीर में दानव-सा बल एवं आसुरी पराक्रम आ गया था।

सड़क के किनारे फटे-चिथड़े पहने हुए एक पगली भीख माँग रही थी। विकल को देखते ही दौड़कर उसके पैरों के पास गिर पड़ी—"विकल!...मुझे क्षमा कर दो विकल!...." वह पगली आर्तनाद कर उठी?

विकल ने पहचाना, वह पगली उसकी नई अम्माँ रसना देवी थी, पापों का अभिशाप भोग रही थी। पण्डित उसका सब कुछ लूट-कर उसे छोड़ चुका था।

विकल ने उसकी ओर एक बार दयार्द्र दृष्टि से देखा और पुनः अपना रिक्शा लेकर सामने की ओर बढ़ चला। एक बड़ी-सी दुकान पर जलकणों से भींगते हुए एक दम्पत्ति खड़े थे! खाली रिक्शे को आते देखकर पुरुष ने आवाज दी। विकल ने रिक्शा खड़ा कर दिया। दम्पत्ति रिक्शे पर चढ़ गये। विकल दूसरी ओर देख रहा था। उसे कुछ परवाह न थी कि कौन उसके रिक्शे पर चढ़ा है। और उसे मजदूरी क्या मिलेगी? वर्षा से घबड़ाये हुए होने के कारण दम्पत्ति ने भी रिक्शावाले पर कुछ ध्यान न दिया। विकल रिक्शा उठाकर धीरे-धीरे चलने लगा। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे और बरसती हुई बड़ी-बड़ी बूँदें उसके शरीर में सिहरन भर देती थीं।

"ओ रिक्शेवाले !" पुरुष महोदय रिक्शे की सुस्ती पर बिगड़ पड़े—"तेजी से ले चल !...."

"चलने दो बिचारे को—एक तो पानी बरस रहा है, दूसरे लूला है..." स्त्री ने रिक्शेवाले की सिफारिश की।

तत्पश्चात् पुरुष और स्त्री आपस में बातें करने लगे।

"वह परेशान हुए, परन्तु उसका पता न मिला....न जाने कहां जा छिपा है..." पुरुष ने कहा।

"अफजल का भी पता नहीं—वैसे तो वह भी अक्सर शहर में घूमता हुआ मिल जाया करता था।" स्त्री बोली।

एकाएक रिक्शेवाले को खांसी आ गई और उसके मुँह से खून का फव्वारा फूट पड़ा। वह रिक्शा लिये-दिये भूमि पर गिर पड़ा। दम्पत्ति गिरते-गिरते बचे।

परन्तु रिक्शेवाले को देखते ही स्त्री चीख पड़ी—"विकल ! उफ् ! विकल तुम !"

"मरणासन्न विकल ने उन्हें देखा। उसका शरीर ऐंठने लगा था। क्षीण स्वर में उसने पुकारा—"कान्ता !....अनूप !...."

और हवा के तीव्र झोंके पर सवार होकर उसकी प्राण-वायु फुर्र से उड़ गई।

"विकल !...." दौड़ते हुए आते अफजल ने विकल की लाश पर अपना सर पटक दिया। उन्होंने उसे हिला-डुला कर देखा सब समाप्त था।

गुलाब भी आ पहुँची थी। विकल की लाश देखकर वह छाती पीटने लगी अफजल को रोना नहीं आ रहा था। आज तक वह कभी रोया भी न था। वह सिक्त-नेत्रों से गुलाब को ओर देखता हुआ

बोला, "चुप रह ! चुप रह छोकरी ! नहीं तो खुदा कसम मैं भी रो पड़ूँगा...."

अनूप और कान्ता विमूढ़ से खड़े थे। जिन्दा विकल को खोज रहे थे, वे परन्तु अब तो इस संसार में केवल उसका निर्जीव शरीर भर रह गया था। हाड़-मांस का वह बोलता हुआ पुतला कहाँ था ? अब कहाँ था वह विकल !

"या खुदा...." कहते हुए दीर्घाकार अफजल ने झुककर विकल की लाश उठा ली और उसे कन्धे पर लाद लिया। बायें हाथ से उसने लाश की टाँग पकड़कर सम्हाला और दाहिने हाथ से रिक्शा उठा लिया, तत्पश्चात् गुलाब से बोला—"चल छोकरी विकल चला गया, मगर हमारी गरीबी तो हमारा साथ आखिर तक निभायेगी। हम फिर वैसे ही दिन गुजारेंगे—अमीरों को लूटकर उन्हें धोखा देकर अपना धन्धा चालू रखेंगे हमें वह बुरा रास्ता ही ठीक है—अच्छाई की तरफ रागिब करने वाला विकल तो रहा ही नहीं....खुदा कसम। हमें धोखा देकर चला गया, बेईमान—" जमा हो गई भीड़ ने देखा कि उस दुर्दान्त गिरहकट की आँखों से आँसुओं की नदी बह चली है।

"चलो आका !...." गुलाब ने कहा, इस समय उसकी आँखें नीरस थीं, शुष्क थीं, मानो असह्य यन्त्रणा ने उसके आँसू सुखा डाले थे। अफजल धर्र-धर्र रिक्शा खींचता चल पड़ा, गुलाब उसके पीछे-पीछे चली।

अफजल को जाता देखकर कान्ता चिल्ला पड़ी—"अफजल !.... आओ मेरे यहाँ चलो।"

अफजल ने एक बार घूर कर प्रज्वलित नेत्रों से कान्ता की ओर देखा। और बिना कुछ बोले हुए आगे बढ़ चला।

कान्ता ने पुनः दयार्द्र स्वर में पुकारा—"अफजल !.... अफजल ! लाश लेकर मेरे घर चलो..." दौड़कर कान्ता ने

अचानक अफजल का हाथ पकड़ लिया—"चलो अफजल ! तुम भी दरिद्राश्रम में रहकर अपना जीवन परोपकार में व्यतीत करना ?....लाश लेकर चलो ?"

"आप लाश चाहती हैं...." अफजल गम्भीर वाणी में बोला—"कहिये तो अपना कलेजा निकाल कर दे दूं लेकिन यह लाश नहीं दे सकता, हुजूर ! खुदा कसम ! विकल खुद नहीं मरा है, मुझे मार गया...." रो पड़ा अफजल और पुनः आगे बढ़ चला।

"अफजल !...." कान्ता चिल्लाती रही—"मेरे साथ आओ, अफजल ! विकल की लाश मुझे दे दो, अफजल !"

अफजल ने मानों न कुछ सुना, न कुछ देखा। वह आगे बढ़ता ही गया। अनूप और कान्ता अवाक् होकर अफजल को विकल की लाश ले जाते हुए अनिमिष नेत्रों से खड़े देखते रहें....उनकी आँखें अविराम गति से अश्रुवर्षा कर रही थी। पास ही से जाता हुआ एक ताँगे वाला अलाप उठा—

तुमको मुबारक हो महल अटारी,
हमको है प्यारी हमारी गलियाँ........

'इत्यलम्'

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार



स्व० कुशवाहा 'कान्त'

स्व० कुशवाहा 'कान्त' का नाम आज से ३० वर्ष पूर्व हिन्दी उपन्यास जगत में उदित हुआ था। उस समय उनकी सरस-सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल सी मचा दी थी। उनके उपन्यासों की संख्या सन् १९५२ तक मात्र ३५ ही थी। इन पैंतीसों उपन्यासों के प्रकाशित होते-होते वे अत्यधिक लोकप्रिय लेखक माने जाने लगे थे। उनकी अपूर्व लोकप्रियता, उनके निधन के २२ वर्षों के बाद भी रंच मात्र कम नहीं हुई है। इसका ज्वलंत प्रमाण है कि कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा उनके नाम से जाली और नकली उपन्यासों का प्रकाशन कर उनके प्रेमी पाठकों तथा पुस्तक विक्रेताओं को ठगा जा रहा है।

अतः स्व० कुशवाहा 'कांत' के प्रेमी पाठकों से नम्र निवेदन है कि आप इस प्रकार की जाली और नकली पुस्तकें खरीदने से बचें। उनकी लिखी केवल ३५ ही पुस्तकें हैं, जिसकी सम्पूर्ण सूची प्रस्तुत पुस्तक के अन्दर के पृष्ठ पर अंकित है।

महान उपन्यासकार स्व० कुशवाहा 'कान्त' की सभी पुस्तकें पाकेट बुक्स आकार में अप्राप्य थीं। उनके प्रेमी पाठकों के निरंतर अनुरोध पर उनकी लोकप्रिय कृतियां जो अबतक पाकेट बुक्स आकार में नहीं प्रकाशित हुई थीं, अब सुरुचिपूर्ण-आकर्षक पाकेट बुक्स आकार में सरस्वती पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित कर उनके सभी प्रेमी पाठकों तक पहुँचाई जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं लोकप्रिय उपन्यासों में से एक है जो आपके समक्ष प्रस्तुत है।